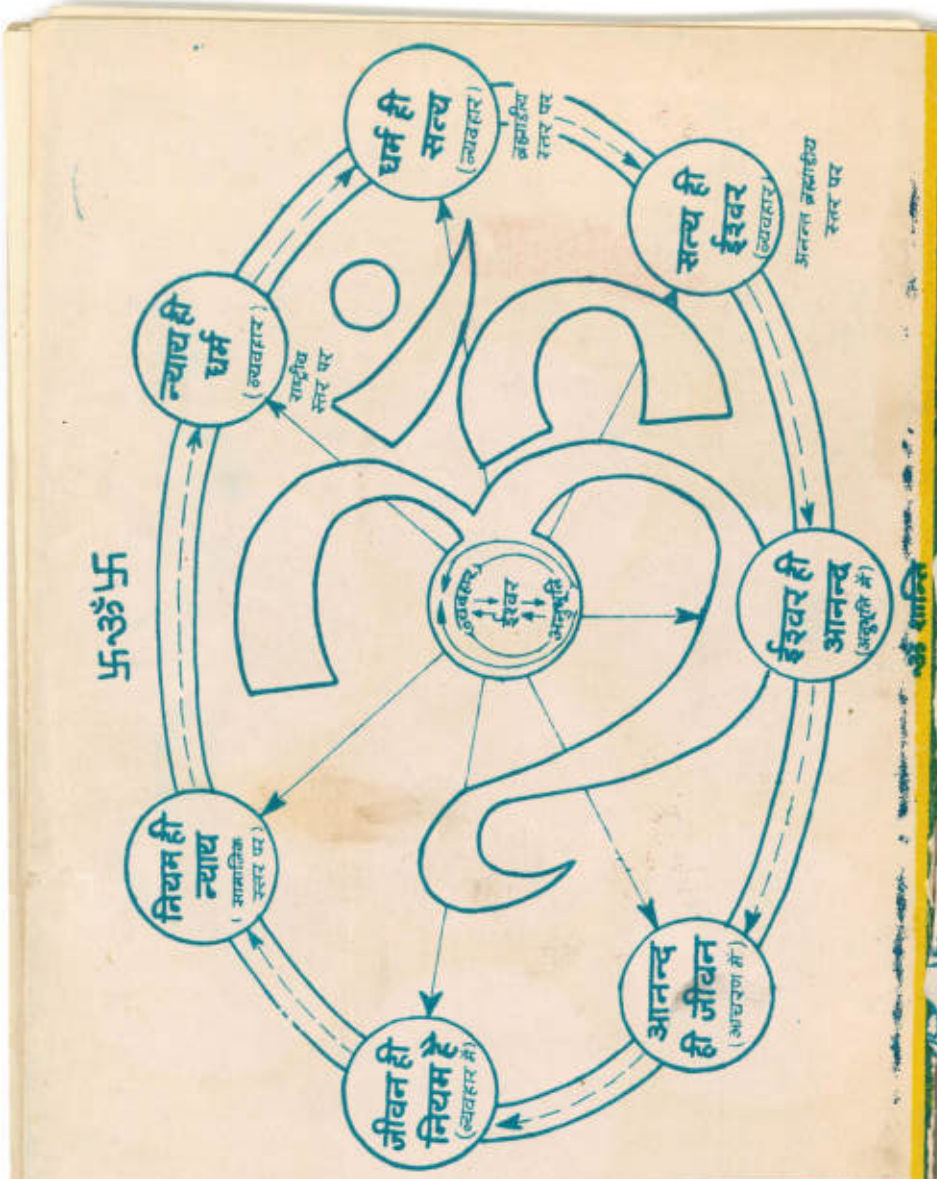

जीवन विद्या प्रकाशन
श्री भजनाश्रम अमरकंटक, शहडोल (म. प्र.)

अनुभव दर्शन

– नागराज शर्मा

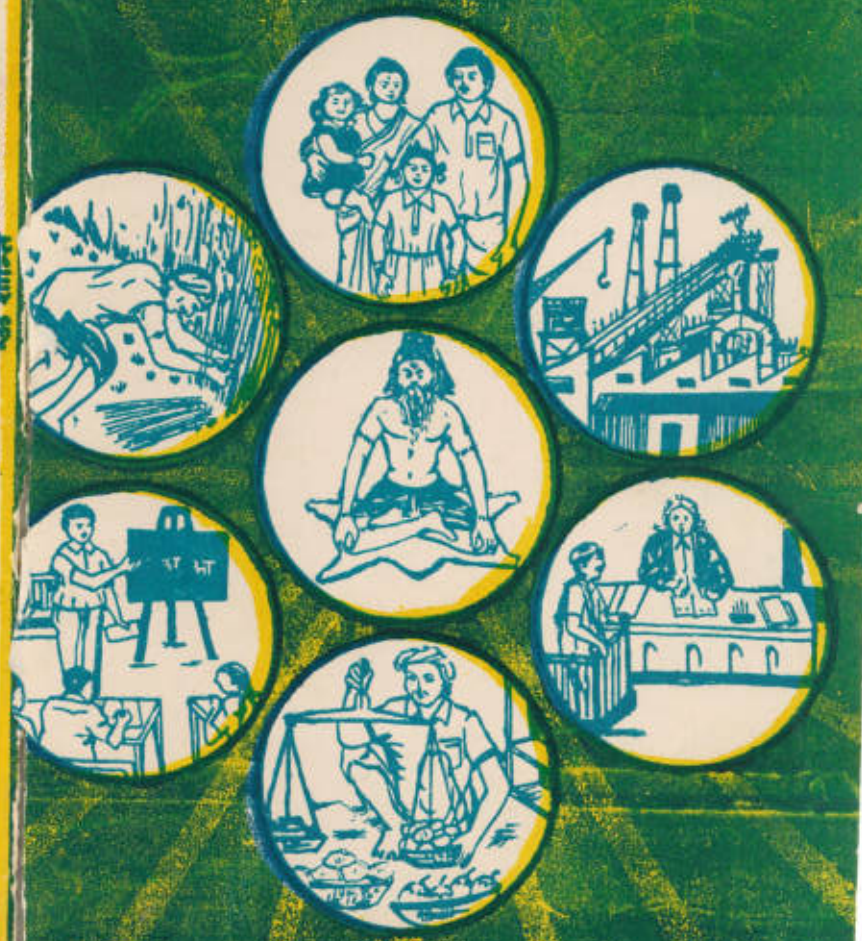

अनुभव - दर्शन (१)

(प्रथम संस्करण)

प्रणेता एवं लेखक–

ए० नागराज शर्मा,

श्री भजनाश्रम,

श्री नर्मदाचल

पोष्ट – अमरकंटक

जि० शहडोल (म० प्र०)

भारत

सर्वाधिकार–
प्रणेता एवं लेखक के
पास सुरक्षित

मुद्रण एवं प्रकाशन
विनय प्रकाशन
सत्ती चौक गंजपारा
दुर्ग (म. प्र.)

प्राप्ति स्थान–
श्री भजनाश्रम
श्री नर्मदाचल
पोष्ट अमरकंटक
जिला-शहडोल
(म० प्र०) भारत

प्रथम संस्करण के प्रकाशक
जीवन विद्या प्रकाशन
श्री भजनाश्रम अमरकंटक

प्रथम संस्करण
तीन हजार प्रतियां

प्राक्कथन

यह अनुभव दर्शन अस्तित्व में अनुभूति और उसकी महिमा व गरिमा की अभिव्यक्ति है। अस्तित्व में सह अस्तित्व, सह अस्तित्व में विकास, विकास क्रम में जीवन घटना एक यथार्थ स्थिति है। जीवन जागृति ही अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रकाशन है। इसी क्रम में मनुष्य अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होना, अनुभूत होता है। अस्तित्व में अविभाज्य अंगभूत मनुष्य में ही जीवन जागृति की अभिव्यक्ति होने की संभावना नित्य समीचीन है। प्रत्येक मनुष्य में/से/के लिए/अनुभव–क्षमता, क्षमता के रूप में समान रूप से विद्यमान है, इसी सत्यता वश अनुभवाभिव्यक्ति की पुष्टि सार्वभौम रूप में होती है। अस्तु अनुभव दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए प्रामाणिकता का अनुभव कर रहा हूं। प्रामाणिकता ही आनंद और अनुभव की अभिव्यक्ति है।

यही संप्रेषणा में समाधान और उसकी निरन्तरता है। अनुभव जीवन में जागृति का द्योतक है। सम्पूर्ण क्रिया, चाहे व जड़ हो अथवा चैतन्य हो, स्थिति में बल और गति में शक्ति के रूप में वर्तमान है क्योंकि स्थिति के बिना गति सिद्ध नहीं होती। इसी सत्यता के आधार पर, अनुभव ही स्थिति में आनन्द अर्थात प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति में ही अर्थात गति में प्रमाण तथा समाधान है।

अस्तु ! अध्ययनपूर्वक जीवन जागृति व अनुभव बल के अर्थ में यह अभिव्यक्ति सहज–सुलभ हुआ है। इसे मानव को अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

अमरकंटक
१४.१.८८

– नागराज शर्मा
प्रणेता
मध्यस्थ दर्शन "सहअस्तित्ववाद"

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम ।।

- भूमि एक, राष्ट्र अनेक ।
- मनुष्य की जाति एक, कर्म अनेक ।।
- मानव का धर्म एक, मत अनेक ।।।
- ईश्वर एक, देवता अनेक ।।।।

जाने हुए को मान लो,
माने हुए को जान लो ।

卐 एक

अब ब्रहम जिज्ञासा है ।
"मैं" और "मेरा" के सन्दर्भ में निर्भ्रान्ति अथवा असन्दिग्धता ही ब्रह्म जिज्ञासा है ।
चैतन्य इकाई के मध्यांश की संज्ञा "मैं" है जो आत्मा के नाम से अभिहित है ।
"मैं" से मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि का वियोग नहीं है । इनमें आत्मानुगामी बनने योग्य क्षमता की प्रस्थापन प्रक्रिया ही साधना है । इन चारों के समुच्चय की संज्ञा "मेरा" है ।
देह और देहकृत परिणामों का योग-वियोग प्रसिद्ध है जो मेरे द्वारा निर्मित या स्वीकृत रहा है ।
"वह" (ब्रह्म) व्यापक है, जबकि प्रत्येक क्रिया सीमित है ।
वह अपरिणामी और अस्तित्वपूर्ण है जबकि प्रत्येक क्रिया परिणाम और विकास पूर्वक स्थितिशील है ।
"वह" शब्दों द्वारा पूर्णतया उद्घाटित नहीं है । शब्दों के द्वारा ब्रह्म का अपूर्ण निरूपण "वह" की अप्रचुरता का नहीं, अपितु शब्द की अक्षमता का द्योतक है । शब्द की उत्पत्ति तथा स्थिति पायी जाती है वह केवल साम्य और व्यापक पूर्ण अस्तित्व ही है ।
"मैं" निर्भ्रमित अवस्था में आत्मा हूं, भ्रमित अवस्था में अहंकार हूं, जो विकास और अविकास का द्योतक है । भ्रमित बुद्धि ही अहंकार है । आत्म-बोध ही ब्रह्मानुभूति की जिज्ञासा है ।
"वह" सबका इष्ट है ।
"वह" सबको सर्वदा सर्वत्र एक सा प्राप्त है । जबकि हर इकाई दूसरी इकाई के लिये प्राप्य है ।
प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य का आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है । आत्मा ब्रह्म से भिन्न होते हुये भी नेष्ट नहीं है, क्योंकि प्रकृति का सर्वोच्च विकासपूर्ण अथवा विकासशील अंश ही आत्मा है ।

यह चारों अवस्थाओं में प्रत्यक्ष है ।
विकास भेद से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार ही अवस्थाओं में दृष्टव्य है । प्रत्येक इकाई प्रकृति का अभिन्न अंग है ।
ज्ञानावस्था में निर्भ्रम इकाई को जीवन के अमरत्व, शरीर के नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियमों की समझ होती है, अन्यथा वह उसके लिये बाध्य है । प्रकृति (क्रिया–समुच्चय) ब्रह्म में अनादिकाल से अनन्तकाल तक सह अस्तित्वपूर्ण है ।
प्रकृति अनन्त इकाइयों का समूह है ।
प्रत्येक इकाई का विकास एवं ह्रास उसकी गति से उत्पन्न सापेक्ष शक्ति के अन्तर्नियोजन तथा वहिर्गमन की प्रक्रिया पर आधारितहै। शक्ति का अन्तर्नियोजन ही विकास है ।
विकास के संदर्भ में इकाई का तात्पर्य परमाणु से है ।
ब्रह्मानुभूति के योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक ही विकास व ह्रास की सम्भावना बनी रहती है ।
ऐसी क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से संपन्न होना ही मुक्ति है ।
चैतन्य इकाई का जड़ की आस्वादनापेक्षा से मुक्त होना एवं प्रेममयता में अथवा सत्ता में अनुभूत होना ही मोक्ष है ।
ब्रह्मानुभूति के बोध मात्र का आनन्द ही आस्वादन सुख की उपेक्षा है, जिसे "पर वैराग्य" की संज्ञा दी जाती है ।
आनन्द की निरन्तरता ब्रह्मानुभूति का नित्य लक्षण है जो अधिक, न्यून व अभाव से मुक्त है ।
अविकसित इकाइयों के विकास में सहायक होना मुक्त एवं विकसित इकाइयों का स्वभाव है ।
मोक्ष पद ही नित्य, अन्य पद अनित्य हैं ।
मोक्ष पद में ही आनन्द की निरन्तरता है । अन्य किसी पद में नहीं।
आत्मा का अभीष्ट ही "वह" में अनुभूति है इसलिये आत्मा अपने आश्रित बुद्धि, चित्त, वृत्ति एवं मन से प्रभावित नहीं है ।
आत्मा मध्यस्थ क्रिया और ब्रह्म मध्यस्थ सत्ता है ।

सम– विषमात्मक क्रिया तथा शक्ति से आत्मा प्रभावित नहीं है ।
आत्मा ही "मैं" और 'मैं" का इष्ट ब्रह्म है ।
ब्रह्मानुभूति ही जड़ प्रकृति की आसक्ति से मुक्ति है जो मुक्त जीवन अवस्था है । मुक्त जीवन में भूत, भविष्य की पीड़ा एवं वर्तमान का विरोध नहीं है । वे अन्य के विकास के लिए प्रेरणा –स्रोत हैं ।
"वह" का अनुभव ही परमानंद है ।
"वह" के अनुभव की तृष्णा प्रत्येक इकाई में विद्यमान है ।
"वह" का अनुभव आत्मा को और बोध बुद्धि को होता है ।
"वह" ही शून्य, ज्ञान और साम्यसत्ता है । इसलिये "वह" समस्त क्रिया का आधार है । उसे "ज्योति" शब्द से भी जाना जाता है ।
ब्रह्मानुभूति में प्रकाश का अभाव नहीं है, इसलिये यह अनुभूति मूलक उपदेश केवल सार्वभौम लक्ष्य एवं कार्यक्रम की ओर इंगित कराता है ।
आप्तता ही उपदेश (उपाय सहित आदेश) का कारण है ।
मुक्त – जीवन में आप्तता का अभाव नहीं है ।

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ दो

ब्रह्म ज्ञान का अप्रचलन, उसकी अप्रचुरता तथा अप्रतिष्ठा नहीं है। ये केवल उसके योग्य अधिकारी (क्षमता, योग्यता, पात्रता) के अभाव के लक्षण हैं।

जो अस्तित्व में है उसकी जानकारी न होने मात्र से उसमें अथवा उसकी कोई क्षति सिद्ध नहीं होती।

अस्तित्व में पायी जाने वाली वस्तु के स्वभाव, धर्म, गुण एवं समुचित व्यवहार के अध्ययन तथा ज्ञानपूर्वक किये गये अभ्यास से ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता का विकास होता है।

ब्रह्म ही सत्य, सत्य ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व ही आनन्द है। आनन्द ही ब्रह्मानुभूति है। व्यवसाय–समत्व नियम–पूर्वक व्यवहार–समत्व न्यायपूर्वक विचार–समत्व धर्म (समाधान) पूर्वक अनुभव–समत्व सत्य (प्रमाणिकता) पूर्वक जो ब्रह्म की व्यापकता में प्रत्यक्ष है।

सार्वभौम शुभ के लिये दिशा, प्रेरणा, उपदेश शिक्षा और व्यवस्था देने योग्य क्षमता वस्तु, क्रिया, रचना और व्यवहार की स्थिति सर्व काल में परिणाम एवं परिमार्जन पूर्वक विकास के लिये ही व्यस्त है।

ब्रह्म–सत्ता का अस्तित्व देश कालाबाध है। इसलिये जो परिणाम–शील एवं परिमार्जनशील है, उसी में अधिकार व अनाधिकार, योग्यता और अयोग्यता अपेक्षाकृत प्रक्रिया से अभिप्रेत एवं अभिव्यक्त है।

सभी परमाणु–ग्रह–नक्षत्रादि ब्रह्मावेष्ठित, ब्रह्म में समाहित एवं सम्पृक्त है।

प्रत्येक इकाई गठन पूर्वक इकाई है। प्रत्येक गठन में समाहित प्रत्येक अंश के सभी ओर ब्रह्म है।

व्यापक सत्ता, पूर्ण ही है, जिसकी अनेक संज्ञाऐं हैं।

आकाश–शून्य भी ब्रह्म से रिक्त–मुक्त नहीं हैं।

ब्रह्मानुभूति पर्यन्त कोई भी इकाई, परिणाम, परिवर्तन एवं परिमार्जन से मुक्त नही है।

ज्ञानावस्था की समस्त इकाइयों का मूल लक्ष्य केवल ब्रह्मानुभूति ही है। जीवन और ज्ञानावस्था की इकाइयों जड़ तथा चैतन्य की संयुक्त अवस्था के रुप में जीवित और प्रकट हैं।

जड़ ही विकास पूर्वक चैतन्य हुआ है। चैतन्य का तात्पर्य चैतन्य परमाणुओं का स्वयं में संज्ञानशील व संवेदनशील हो जाना ही है। जीवावस्था की इकाई में आशा का परिवर्तन तथा परिमार्जन, ज्ञानावस्था की इकाई में आशा –विचार –इच्छा और संकल्प का परिवर्तन एवं परिमार्जन प्रसिद्ध है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई(चैतन्य परमाणु) अपने कार्य क्षेत्र सहित पुंजाकार में है। ज्ञानावस्था की प्रत्येक चैतन्य इकाई, अणु समूह से मुक्त, आशा, विचार इच्छा तथा संकल्प से युक्त है। इसलिये यह बन्धन और मोक्ष का कारण है।

आस्वादनाशा बन्धन की ओर, ब्रह्मानुभूति की जिज्ञासा मोक्ष की ओर है। प्रत्येक परमाणु ब्रह्म में ओत–प्रोत है, इसलिये संपूर्ण जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति ब्रह्म में आश्रित, नियंत्रित, प्रेरित, क्रियारत एवं संरक्षित है। यही कारण है कि प्रकृति अनवरत ब्रह्मानुभूति योग्य–अर्हता के लिये अभ्युदयशील है।

आत्मा को ब्रह्मानुभूति, बुद्धि को आत्मानुभूति, चित को बुद्धि की अनुभूति वृत्ति को चित्तानुभूति तथा मन को वृत्ति की अनुभूति की क्षमता होने तक विकास क्रम है। यह अनुभव समुच्चय है जो समत्व या समाधि है। ब्रह्म, प्राप्ति, अप्राप्ति व अभाव के आरोप से मुक्त है।

प्रत्येक इकाई में प्राप्ति–अप्राप्ति के अपेक्षाकृत विविधता प्रकट है जो समाधान नहीं है।

ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण समाधान है।

जड़ चैतन्य का आधार ब्रह्म ही है।
इन्द्रियों द्वारा संपन्न पंच क्रिया–कलाप भी चैतन्य के ही है। चैतन्य के अभाव में इन्द्रिय–व्यापार नहीं है।
ज्ञानात्मा के समस्त क्रिया–कलाओं का उद्देश्य केवल क्लेशों से मुक्ति पाना ही है। समस्यायें ही क्लेश हैं।
जीवात्मा के क्रिया–कलाप केवल विषय भोग तक ही सीमित हैं।
जीवावस्था की चैतन्य इकाई जीवात्मा है।
संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भय ही समस्याओं के प्रधान कारण हैं। ये सब भ्रम हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं है।
असंग्रह, स्नेह, विद्या, सरलता और अभय ही क्लेश से मुक्ति और हर्ष के लक्षण हैं। ये ही समाधान एवं समत्व के भी लक्षण है जिनके अस्तित्व की निरन्तरता पायी जाती है।
तीव्र तापवश मरीचिका भूमि की अपारदर्शकतावश अन्धकार का तथा देहात्मवादी कल्पनावश मृत्यु का भ्रम जैसा भासता है वैसा ही भ्रमवश क्लेश होता है। निर्भ्रमता के योग्यता क्षमता की अपूर्णता ही भ्रम है।
भ्रम का निवारण मात्र अनुभव समुच्चय से ही है।
अनुभव–समुच्चय मानवीयताधिकार पूर्वक अतिमानवीयताधिकारों की सम्पन्नता से है।
अतिमानवीयताधिकार का स्रोत इकाई की अपनी शक्ति की अन्त-र्नियोजन प्रक्रिया है।
क्लेश ही दास्यता है। यह अविकास का प्रतीक है। उससे मुक्ति ही स्वतंत्रता का लक्षण है।
दास्यता से मुक्ति हेतु ही आप्त पुरूषों के विधिवत् उपदेश हैं जो जीवन के कार्यक्रम एवं व्यवस्था के प्रेरणास्रोत हैं।
दास्यता किसी की भी ऐच्छिक प्राप्ति अथवा इष्ट नहीं है।
स्वकर्म–परिपाक (संस्कार), अध्ययन एवं वातावरण ही स्वतन्त्रता

और परतन्त्रता के कारण हैं। इन तीनों कारणों की व्याख्या निर्भ्रम स्थिति के लिये नियोजित होने योग्य प्रक्रिया के विश्लेषण के संदर्भ में मानव व्यवहार दर्शन में की जा चुकी है।
भोगों की सीमा में सुख भासता है, जिसकी निरन्तरता नहीं है, यह प्रसिद्ध है।
ज्ञानावस्था की प्रत्येक इकाई आनन्दानुभूति तथा उसकी निरंतरता की ही इच्छुक है। बहुसंख्यक इकाइयां विषयभोग की सीमा में ही इसे पाना चाहती हैं। परिणामतः क्लेश है।
ज्ञानावस्था की इकाइयों में क्रिया–कलाप से आस्वादन एवं अनु–भूति ही परिलक्षित होती है।
आस्वादन में सुख, शान्ति, सन्तोष तथा आनन्द मात्र भासता है। उसकी निरन्तरता नही है।अनुभूति केवल ब्रह्म में, से, के लिए है। ब्रह्म ही सत्य है। नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य मे ही अनुभव है। सम्पूर्ण व्यवहार एवं क्रिया का नियन्त्रण सत्य में है। इसलिये जड़ प्रकृति की सत्यता का ज्ञान, चैतन्य का बोध एवं व्यापक सत्ता का अनुभव स्वयं सिद्ध है।
जड़ प्रकृति की वस्तुस्थिति को रासायनिक प्रक्रिया एवं भौतिक संरचना के ज्ञान से,ज्ञानावस्था की इकाइयां नियंत्रण पूर्वक उसका उपयोग, उपभोग, शोषण एवं पोषण करती है।
चैतन्य प्रकृति बोधपूर्ण होने पर स्वमूल्यांकन पूर्वक मानवीयतापूर्ण सामाजिकता से सम्पन्न होता है। फलस्वरुप देव एवं दिव्य मानवीयता के प्रति जिज्ञासा एवं लक्ष्य स्फुरित होता है। उसकी पूर्ति हेतु प्रयास भी प्रत्यक्ष है।
चैतन्य इकाई (चैतन्य परमाणु) में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा का समावेश है जिसके अध्ययन के बिना सत्यता संभव नहीं है।

मन में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, वृत्ति में अठारह प्रकार के तुलन, चित्त में आठ प्रकार के चित्रण, बुद्धि में दो प्रकार के बोध एवं आत्मा में मात्र अनुभूति (अनुभव योग्य क्षमता), क्रिया का विश्लेषण मानव – व्यवहार–दर्शन में किया गया है। उपरोक्त वास्तविकतायें स्थिति में होना पाया जाता है। साथ ही गति में क्रम से उतनी ही संख्या में अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन होने के सत्य को स्पष्ट किया हैं (कृपया परिशिष्ट क्रमांक एक में देखिये) ब्रह्मानुभूति ही आनंद की निरन्तरता है।

मनुष्य के जीवन में जड़ सम्पत्ति (भौतिक समृध्दि) परस्पर मानवीयता पूर्ण व्यवहार के साथ ही समाधान एवं उसकी निरन्तरता है जिसकी उत्कृष्ट अभिलाषा भी प्रसिध्द है।

आस्वादन एवं अनुभूति का अवसर मात्र ज्ञानावस्था की इकाई को ही प्राप्त है। प्रकृति की स्थिति–संकेत – ग्रहण की क्षमता तथा व्यापकता में अनुमान–अनुभव की क्षमता ही ज्ञानावस्था की प्रधान अवसर एवं उपलब्धि के रूप में प्राप्त गरिमा है। ज्ञानावस्था ही वांछित परिमार्जन से देव तथा दिव्यात्मा का पद पाती है न कि जीवात्मा।

दिव्यात्मा का पद ही मोक्ष पद है। यही विकास का चरमोत्कर्ष है। दया, कृपा, करुणा ही दिव्यात्मा का स्वभाव, ब्रह्म उसका विषय तथा दृष्टि केवल सत्य है।

शारीरिक व्यामोह की सीमा तक ज्ञानावस्था भी जीवात्मा के सदृश दु:ख–शोकादि कार्मण्य दोष (क्लेश परिपाकात्मक क्षमता) से पीड़ित, भ्रमित है जो केवल न्याय, धर्म, सत्यानुभूति योग्य क्षमता का अभाव ही है। आत्मा स्वभाव से अनुभवरत, बुध्दि विशेषज्ञ चित्त चित्रण वेत्ता, वृत्ति विचार वेत्ता एवं मन स्वभाव से रसज्ञ है। यह सब विकास पूर्वक ही अनुभूति से सम्पन्न होते हैं।

ज्ञानात्मा मनुष्य के स्थूल रूप को इच्छानुसार संचालित करने वाला चैतन्य पुंज ही है। जीव शरीर को संचालित करने वाला पुंज ही जीवात्मा है. अनुभूतिपर्यन्त विकास के प्रयास का अभाव नहीं है। साथ ही परिणाम एवं परिमार्जन प्रक्रिया से मुक्त नहीं है। वस्तु, गुण, रचना, आशा, विचार और इच्छा में परिणाम, परिवर्तन तथा परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

जड़ पक्ष में परिणाम और परिवर्तन, चैतन्य पक्ष में परिवर्तन और परिमार्जन क्रिया को पाया जाता है।

वस्तु (पदार्थ), गुण (सापेक्ष शक्ति), संरचता (आकार– प्रकार), के परिणाम – परिवर्तन का कारण विकासक्रम ही है। वस्तु गुण एवं संरचना में परिणाम व परिवर्तन का कारण ही है उनका अस्थावित्व और अपूर्णता पदार्थ तत्वत: परमाणु के स्वभाव गति के रूप में प्राप्त है।

परमाणुओं की अनेक प्रजातियां प्राप्त हैं जिन्हें भौतिक शास्त्र ने भी सिद्ध कर दिया है।

चैतन्य परमाणुओं में गठनात्मक जातियों नहीं पायी जाती हैं। फलत: जिसके कारण उनमें गठन सीमा में विविधता नहीं प्रकट होती है।

ज्ञानावस्था की इकाईयों विभ्रान्ति तथा भ्रान्ताभ्रान्त तथा भ्रान्त भेद से गण्य है। भ्रान्त इकाइयां चार विषयों के भोग के लिये. भ्रान्ताभ्रान्त इकाइयों तीन एषणाओं के भोग के लिये तथा निर्भ्रान्त इकाइयों ब्रह्मानु भूति के लिये प्रयत्नशील हैं।

चैतन्य इकाईयों (चैतन्य परमाणुओं) में गठन (रूप) परिवर्तन नहीं है। जड़ परमाणुओं में ही गठन– गुण व रचना का परिवर्तन पाया जाता है।

परमाणु में जितने अंशों के सामाने की सम्भावना है उतने अंशों का गठनोपरान्त चैतन्य होना और उन समस्त अंशों का अल्प, अर्थ व

पूर्ण क्रियाशीलता (जागृति) पूर्वक ही परिवर्तित एवं परिमार्जित होना पाया जाता है मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि में परिवर्तन व परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

चैतन्यवस्था की इकाइयों में गठन पूर्णता सम्पन्न हो चुकी है। (जिसके कारण ज्ञानाअत्मा में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, अठारह प्रकार के तुलन, आठ प्रकार के चित्रण, दो प्रकार की बोध क्रियाएं और आत्मा में मात्र अनुभूति सिद्ध होती है।)

अन्तर्यामी की संज्ञा से व्यापकता की महिमा को इंगित किया गया है। अन्तर्यामी में अनुभूति से अभिमान समाप्त होता है। अभिमान भी भ्रम है। अन्तर्यामी का बोध मात्र से ही अनन्त संसार को एक परिवार के रूप में आत्मीयता (अनन्यता) पूर्वक स्वीकारता है। आत्मीयता ही परस्पर अपराधी तथा अपव्ययों का निरोधक और नियामक है। साथ ही न्याय, धर्म, सत्य के अनुसरण के लिये प्रेरक है।

परस्परता में अपराध एवं अपव्यय का अभाव ही सह- अस्तित्व और सामरस्यता है। व्यवहार काल में मानव सह- अस्तित्व की कामना करता है।

आत्मबोध के अभाव में अन्तर्यामित्व का ज्ञान होना सम्भव नहीं हैं। सत्ता में सम्पृक्तता का बोध ही अन्तर्यामी का बोध है।

आत्मा अनवरत मध्यस्थ क्रिया है। वह अधिक व कम से मुक्त है, आवेश से रहित है, शोक-मोह- भ्रम से मुक्त है। इसलिये आत्मा से प्रभावित बुद्धि, बुध्दि से प्रभावित चित्त, चित्त से प्रभावित वृत्ति, वृत्ति से प्रभावित मन ही व्यवसाय व्यवस्था और व्यवहार का नियन्त्रण करता है। अन्यथा में व्यवहार और व्यवसाय कृत्रिम व्यवस्था द्वारा ही नियंत्रित पाया जाता हैं, जो दासता है। यही दूसरे को दास बनाने का प्रयास करता है। जिसमें जो होता है उसी का वह बंटन करता है।

दासत्व तीन रूपों में परिलक्षित होता है :-

१. व्यवहार दासत्व,

२. कर्म दासत्व,

३. विचार दासत्व।

दासत्व क्रम से न्याय, समाधान और अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता से समाप्त होता है।

आत्मा मध्यस्थ क्रिया की प्रतिष्ठता से प्रतिष्ठित है। मध्यस्थता ही समाधान, समाधान ही न्याय, न्याय ही मध्यस्थता या समत्व है। अनुभूति- योग्य अवसर मनुष्य को प्राप्त है, इसलिये नित्य प्रया-सोदय है। आत्मा चैतन्य इकाई के गठन के मध्य में स्थित पायी जाती है। अतः वह मध्यस्थ क्रिया है। अन्य चारों स्तरीय अंश अन्तरान्तर परिवेश में आत्मा के सभी ओर भ्रमणशील है, इस-लिये सम एवं विषम क्रियाएं है।

इकाई का नियन्त्रण मध्यस्थता में ही है।

जड़- क्रिया का नियन्त्रण नियम में, सामाजिकता का नियन्त्रण न्याय में, आशा विचार एवं इच्छा का नियन्त्रण समाधान में, अनुभव का नियन्त्रण बहम में ही है। अनन्त क्रिया समूह ही प्रकृति एवं विराट है। प्रत्येक क्रिया विराट का एक अंश है। प्रत्येक परमाणु भी एक सूक्ष्म विराट है। लक्षण लक्ष्य पूर्वक ही नियम, न्याय, समाधान में अनुभव पूर्वक दर्शन है।

नियम में अपरिणाम-अपरिवर्तन-अपरिपाक, न्याय में असन्दिग्धता व अभयता, धर्म में निर्विषमता एवं सह-अस्तित्व, समाधान में स्वर्गीयता व समृद्धि और अनुभव में आनन्द और प्रामाणिकता की निरन्तरता है। इसके लिये ही मानव तृषित है।

नियम, न्याय, धर्म सत्य शब्द भी ब्रह्म में इंगित करते है। इन सबमें व्यापकता ही स्पष्ट इंगित है। व्यापक पूर्ण ही हैं। इकाई में

स्वतन्त्रता ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व, ही समाधि, समाधि ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन ही स्वतन्त्रता है।

स्वतन्त्रता की कामना प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है।

जड़ प्रकृति के साथ नियम पूर्वक व्यवसाय, समाज के साथ न्याय पूर्वक व्यवहार, साथ समाधान पूर्ण विचार एवं सत्ता में अनुभवपूर्ण क्षमता से संपन्न होना ही चैतन्य इकाई का परम विकास हैं। यही स्वतन्त्रता का आद्यन्त लक्षण, स्वानुशासन का स्वरूप है।

स्वतन्त्र इकाई विकासपूर्ण है तथा अन्य उसका अनुकरण पूर्वक पूर्णता के ओर हैं।।

विकास पूर्ण इकाई अन्य के अभ्युदय के लिये सहायक है।

स्वतन्त्र इकाइयों की संख्या वृद्धि हेतु मानवीयता की सीमा में व्यवहार, व्यवसाय तथा व्यवस्था का अध्ययन व आचरण की एकसूत्रता आवश्यक है। इकाई विकास पूर्वक ही अनुभव वेत्ता सिद्ध हुई है।

जड़ अवस्था से विकास पूर्वक चैतन्य अवस्था प्राप्त होती है। ये चैतन्य इकाइयों ही जीवात्मा तथा ज्ञानात्मा के प्रभेद से गण्य है। मनुष्याकार शरीर को ज्ञानात्मा अपनी आशा, विचार एवं इच्छानुसार संचालित करती है। जीवात्मा मनुष्येत्तर पशु-पक्षी आदि जीव शरीरों को आज्ञानुरूप संचालित करती है। ज्ञानात्मा ही विवासपूर्वक मनुष्यात्मा, देवात्मा या दिव्यात्मा में गण्य है। क्रम से इन्हीं को मानव, देव मानव और दिव्य मानव की संज्ञा प्रदान की गयी है।

दिव्य मानव को ब्रह्मानुभूति, देव मानव को ब्रह्म प्रतीति और मानवीयतापूर्ण मानव को ब्रह्म का आभास होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चार विषय एवं तीन एक्षणाओं के भोगों से सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द का आभास होता है। इनकी निरन्तरता का न होना प्रसिध्द है।

आनन्द की निरन्तरता की आशा, आकांक्षा और जिज्ञासा मानव के पायी जाती है। विकासपूर्वक ब्रह्मानुभूति के लिये मनुष्य प्रसासरत है, इसलिये क्रिया तथा ब्रह्म में लक्षण भेद है।

क्रिया अनन्त संख्या में, अनेक अवस्थाओं सहित स्थूल, सूक्ष्म और कारण भेद से प्रत्यक्ष है। ब्रह्म अखण्ड, पूर्ण, व्यापाक है।

जड़ (स्थूल) क्रिया का परिणाम, परिवर्तन, परिपाक प्रत्यक्ष है। चैतन्य क्रिया में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प की सक्रियता और उसका परिमार्जन, विकल्प तथा परिवर्तन भी प्रसिद्ध है। सत्यानुभव–योग्य क्षमता–योग्यता–पात्रता से परिपूर्ण होने तक परिणाम, परिवर्तन, परिपाक, परिमार्जन और विकल्प की श्रृंखला बनी हुई है, जो अपूर्णता एवं परतन्त्रता का लक्षण है।

सत्यानुभव आत्मा को, बोध बुद्धि को, प्रतीति चित्त को, आभास वृत्ति को एवं भास मन को होता है।

अनुभव–क्षमता की आंशिकता में बोध, बोध की आंशिकता में प्रतीति, प्रतीति की आंशिकता मे आभास एवं आभास की आंशिकता में भास–क्षमता प्रसिद्ध है जो साक्ष्य में प्रत्यक्ष होने वाली संवेदन–क्रियाएं हैं।

श्रवणादि पांच क्रियाओं द्वारा आस्वादन एवं स्वागत ४ क्रिया की अभिव्यक्ति होती है। स्वागत भाव पक्ष, अर्थात् मूल्य पक्ष का बोधपूर्वक अनुभव भी होता है।

कोई भी एक से अधिक वस्तुएं मिलकर तिसरी वस्तु बनना। विशेषकर रासायनिक रूप मे होते हैं। २ श्रेष्ठता और श्रेष्ठता की ओर प्रक्रिया। ३ अभाव भाव में अवतरण की प्रक्रिया। ४ स्वीकारी प्रक्रिया।

स्वागत एवं आस्वादन क्रिया मानव में प्रसिद्ध हैं।

स्वागत भाव में अनुभव के लिये, आस्वादन भाव में भोगों के लिये अनुमानांकुर है।

भोग पूर्वक आस्वादन केवल जड़ पक्ष में, से, के लिये है।

अनुभवकांक्षी स्वागत भाव सत्य में ही है।

लोक सत्य, वस्तुस्थिति एवं वस्तुगत सत्य के रूप में तथा व्यापक स्थितिपूर्ण प्रसिध्द है। यह प्रमाण सिध्द हैं। दर्शन क्षमता की अपूर्णता की स्थिति में अनुमान, अध्ययन और अनुभव के लिये प्रयास का उदय होता है।

लक्षण और लक्ष्य के योगफल में अनुमान का उदय होता है। विज्ञान एवं विवेकज्ञान ही प्रमाण है जो अनुभव, समाधान,व्यवहार व प्रयोग ही है।

वस्तु-स्थिति सामयिक सत्य है।

काल–क्रिया–परिणाम से परे, नित्य–सत्य, ब्रह्म ही है।

आस्वादन भाव की अपेक्षा में स्वागत भाव का अधिक हो जाना ही विकास की ओर गति है। इसके विपरीत भोगों में प्रवित्त है जो अविकास व ह्रास का लक्षण है।

आत्मा कारण (मध्यस्थ) क्रिया है। अस्तित्व एवं आनन्द ही उसका आद्यन्त लक्षण है।

ज्ञानावस्था में मानवीयता पूर्ण मनुष्य ही व्यवसायशील,व्यवहारशील विचारशील एवं अनुभवशील इकाई है।

मनुष्य में व्यवहार–काल, विचार–काल एवं अनुभव काल प्रसिध्द है। व्यवसाय, व्यवहार एवं विचार की उपादेयता अनुभव कीआशा एवं आकांक्षा में ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई सत्तानहीं हैं।

मानव अपने से कम विकसित के साथ व्यवसाय, समान के साथ व्यवहार, अधिक विकसित का सान्निध्य और व्यापकता में अनुभव करता है, करना चाहता है या करने के लिये वाध्य है।

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

"ज्ञानात्मोर्विजयते"

卐 तीन

क्रिया समूह ही विराट है ।

इकाइयों विकास के अन्तरान्तर वैविध्यता से रहित नहीं है ।

असंख्य विविधता का समूह ही विराट है ।

विराट ही प्रकृति है ।

ब्रह्म व्यापक और स्थिर है । अतः उसमें कोई तरंग, कम्पन, स्पन्दन और गति नहीं है ।

"वह" अपरिणामी है ।

"वह" आकार–प्रकारात्मक सीमा से बाधित नहीं है । अतः उसमें कोई संकल्प–विकल्प नहीं है ।

सत्ता में समाहित अनन्त क्रियाएं गतिशील, सपन्दनशील, कंपनशील और तरंगित पायी जाती हैं जिसके फलस्वरूप परिणाम–परिपाक–पूर्वक प्रकृति चार अवस्थाओं में प्रकट है ।

प्रत्येक क्रिया सीमित, सत्ता में सम्पृक्त है । अतः परिणामादि क्रिया का कारण नहीं है ।

क्रिया–समूह का आधार ब्रह्म ही है । यह निर्णय ज्ञानावस्था की इकाई में है । ब्रह्म में संकल्प–विकल्पादि क्रिया नहीं है ।

ब्रह्म की क्रियाशीलता के प्रति वर्तमान में कोई पुष्टि या प्रमाण नहीं हैं । उसकी व्यापकता के विषय में पुष्टि प्रमाण उपलब्ध है ।

अनुभव ही में वर्तमान क्रिया प्रतिष्ठित है। भूत और भविष्य केवल अनुमान में हैं । अनुमान साधार व निराधार के भेद से गण्य है, जो स्पष्टता तथा अस्पष्टता को प्रकट करता है ।

नियम–प्रक्रिया–लक्षण सहित साधार अनुमान, अन्यथा निराधार अनुमान है । प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य की उपलब्धि प्रसिद्ध है। प्रत्येक इकाई विराट का एक अंश है । इसलिए वह विराट का संकेत ग्रहण करने के लिये बाध्य है ।

प्रकृति–निर्माण के आरम्भिक क्रम तथा, ब्रह्म के अस्तित्व के आरम्भिक काल के संबंध में कोई प्रमाण नहीं है । वर्तमान में सत्ता में समाहित प्रकृति ही प्रत्यक्ष है। प्रकृति और सत्ता के आदि और अन्त की चर्चा विगत और आगत में है, जिसके अन्तराल का कोई प्रमाण नहीं है । गणना ऋण–धन अनन्त की स्थिति में प्रस्तुत हुई, इसलिये

निराधार अनुमान, प्रत्यक्ष या साधार अनुमान (योजनावद्ध अनुमान) नहीं है । यह प्रसिध्द है ।

आकार–आयतन–धनोपाधि युक्त अनन्त लोकों का आधार भी ब्रह्म ही है । सूत्र, छन्द, वाक्य, शब्द के द्वारा क्रिया मात्र का वर्णन है । साथ ही ज्ञानानुभूति के लिये उपदेश-पूर्वक इंगित भी है। ब्रह्म का वर्णन नहीं है । "वह केवल भास–आभास–बोध तथा अनुभव गम्य है । इसका बोध इकाई की क्षमता, योग्यता, पात्रता पर आधारित है ।

प्रत्येक इकाई का आधार ब्रह्म ही है । सबको मूल प्रेरणा "वह" में ही प्राप्त है । प्रकृति सत्ता में सम्पृक्त है, इसलिये ।

ब्रह्म में प्रेरणा प्रदान करने के लिये उसमें संकल्प विकल्पादि की पुष्टि नहीं है ।

नियन्त्रण ही प्रेरणा हैं । व्यापक में ही प्रकृति नियंत्रित है ।

ब्रह्म में रिक्त–मुक्त–क्रिया एवं स्थान नहीं है ।

ब्रह्म व्यापक और क्रिया सीमित है । अतः क्रिया ब्रह्म में सम्पृक्त (आश्लिष्ट संश्लिष्ट) है । इसलिये प्रकृति ब्रह्म में नियंत्रित है । सम्पृक्तता ही नियन्त्रण, नियन्त्रण ही प्रेरणा व प्रेरणा ही ज्ञान है । ज्ञान ही ब्रह्म, ब्रह्म ही व्यापक, व्यापक ही नियन्त्रण, नियन्त्रण ही प्रेरणा, प्रेरणा ही नियम–न्याय–धर्म–सत्य, नियम–न्याय–धर्म–सत्य ही प्रेम, प्रेम ही अनुभूति, अनुभूति ही जीवन, जीवन ही

आनन्द, आनन्द ही ब्रहम और ब्रह्म ही ज्ञान है।
लक्ष्य की ओर त्वरण क्रिया ही प्रेरणा एवं ज्ञान हैं।

प्रकृति मूलतः ब्रह्म में नियन्त्रित व प्रेरित है। वह सदा अभ्युदय-शील है। इसलिये प्रकृति का लक्ष्य मात्र अनुभूति ही है। इसलिये विराट अपने में स्थित जड़ प्रकृति का उपभोग जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में अहर्निश करता आया है। उसे आनन्द की निरन्तरता की प्राप्ति पद–मुक्ति के अतिरिक्त नहीं है। प्रकृति द्वारा प्रकृति के आस्वादन से आनन्द की निरन्तरता नही है। प्रत्येक क्रिया की प्रेरणा में अनुभव से अधिक अनुमान है।

भ्रम का क्षोम ही विश्राम तृषा है ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण विश्राम है। क्रिया मात्र में वस्तुस्थिति का दर्शन-ज्ञान होना एवं सत्य में अनुभव होना प्रसिद्ध है।

ब्रह्म नित्य-सत्य-अक्षर–अखण्ड–ज्ञान शाश्वत है। वह स्थूल, सूक्ष्य कारक क्रिया और परिणाम से रहित, देश–कालातीत एवं पूर्ण है। शब्द एवं उसकी गति भी ब्रह्म में समाहित है।
ब्रह्म शब्द से शून्य भी इंगित है।

प्रकृति की पूर्ण विवेचना के उपरान्त भी ब्रह्म के सदृश कोई और नहीं है तथा उसके संदर्भ मे अनुमान भी नहीं। प्रकृति का उससे पृथक अस्तित्व नही है।

क्रिया और इकाइयों का सान्निध्य एवं सहवास प्रसिद्ध है।वह विरोध अथवा निर्विरोधपूर्वक स्वागत एवं आस्वादन भाव सहित आशा, आकांक्षा तथा इच्छा के रूप में मानव में प्रत्यक्ष है।
ब्रह्म ही परमात्मा है। यही पूर्ण सत्ता है।

ब्रह्म आत्मः का नित्य अभीष्ट होने के कारण उसकी संज्ञा परमात्मा है। इकायां परिमित, परमात्मा अपरिमित है।
प्रत्येक ज्ञानात्मा अपने विभिन्न अंगों सहित एक मानव शरीर को

संचालित करते हुये मानवीयता एवं अतिमानवीयता से परिपूर्ण होने के लियें प्रयासरत है। फलतः परमात्मानुभव करता है।
ज्ञानात्मा मानवीयता तथा उससे अधिक विकास के सीमावर्ती स्वभाव एवं कर्मों में व्यवहार–रत और आकांक्षी है। इसके विपरीत परिपाकवश अमनवीयतात्मक स्वभाव–दृष्टि पूर्वक विषयोपभोग में भी रत पाया जाता है।

अमानवीयता के लक्षण मनुष्येतर जीव में आंशिक रूप में विद्यमान हैं। मनुष्य अमानवीयता पूर्वक भोग, दृष्टि व स्वभाव से ह्रास की ओर अग्रसर होता है।

प्रत्येक ज्ञानात्मा शरीर त्याग के समय सुख या दुख, सुरूप या कुरूप जैसे प्रत्ययों के प्रभाव से पूर्णतः प्रभावित हो जाता है, जो स्वप्रभावीकरण है।
यही जन्म परिपाक प्रक्रिया है।

स्वप्रभावीकरण प्रकिया का बोध मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की शक्तियों की अन्तर्नियोजन प्रकिया से स्पष्ट हो जाता है।
मनुष्य दूसरे के देह त्याग की क्रिया को देखता है। उस समय उसमें पाये जाने वाले लक्षण भी सम्प्रभावीकरण प्रक्रिया पुष्टि है। संस्कारों के प्रभाव का प्रत्यक्ष रुप मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि की क्रिया शीलता है जो "ता–त्रय,, की सीमा मे व्यक्त होती है।
प्रत्येक कर्म के स्फुरण के मूल मे संस्कार है। प्रत्येक कर्म संस्कारदायी है। क्रिया की प्रतिक्रिया व परिपाक प्रसिद्ध है।

आशा एवं चयन–क्रिया की प्रतिक्रिया मन पर, विचार एवं तुलन किया की प्रतिक्रिया वृत्ति पर, इच्छा एवं चिन्तन–चित्रण की प्रतिक्रिया चित्त पर, संकल्प एवं बोध की प्रक्रिया बुध्दि पर होती है।

सत्य बोध योग्य संस्कारों से समृध्द होनें तक बुध्दि ही अंहकार के रूप में क्रियाशील है।

अंहकार ही भ्रम एवं अज्ञान का कारण है।

आत्मा का संकेत ग्रहण करने मे बुध्दि की अक्षमता ही अंहकार है। गुणात्मक (मानवीय तथा अतिमानवीय) संस्कारों द्वारा ही अंहकार से मुक्ति है। साथ ही इससे अभिमान रहित संकल्पोदय होता है। भ्रम से मुक्त होने के लिये सत्यासत्य के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों के दृढ़ संकल्प मे परिणत होनें की दृष्टि से प्रतिबध्द होनें की अनिवार्यता है।

सिध्दान्त व प्रकिया पूर्वक सत्यता का उद्‌घाटन ही शोध है।
कु–सु–संस्कारों के लिये परिवार एवं सामाजिक मान्यताएं, अध्ययन से प्राप्त विषयवस्तु तथा परिवेश–गत प्रेरणाएं सहायक तथ्य है। कृतघ्नता, स्तेय, परिग्रह, असत्य भाषण, परनारी, या परपुरुष–व्यसन, अभिमान, द्रोह, विश्वासघात, निंदा, दायित्व व कर्तव्य–हीनता, उत्पादन मे अप्रवृत्ति आलस्य व प्रमाद, उपभोग की अनियन्त्रित एवं तीव्र प्रवृत्ति, रहस्यता, दिखावा एवं हिंसा कुसंस्कारों के लक्षण है।

कृतज्ञता, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्य भाषण, स्वनारी–स्वपुरुष गमन, सरलता, दया, स्नेह पूर्वक विश्वासपालन, यथार्थवर्णन, कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वहन, आवश्यकता से अधिक उत्पादन, कम उपभोग, उत्साह एवं चेष्टा, रहस्यहीनता, सहजता एवं निर्विरोधिता सुसंस्कारों के लक्षण हैं। लक्षणों के आधार पर ही स्वभाव, तद्नुसार ही मुल्ययांकन क्रिया है। लक्षणविहीन मनुष्य नहीं है।

मानवता स्वतन्त्र या स्वैच्छिक जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है। वह केवल यान्त्रिक नहीं है। इसलिये प्रत्येक मानव इकाई संज्ञान एवं संवेदनशील है, परिस्कृत पूर्ण संचेतक समाज के लिये प्रयासरत है। समाधान एवं अनुभव योग्य क्षमता पर्यन्त विकास भावी है। संवेदशीलता का ही विकास है। यह क्रम प्रत्यावर्तन एवं परावर्तन में सामास्पृता पर्यन्त शृंखलाबद्ध पद्धति से होता रहेगा। परावर्तन प्रकिया से ही प्रतिभा की अभिव्यक्ति मानव मे अमानवीयता मानवीयता एवं अतिमानवीयता के रूप में प्रत्यक्ष है। इन्ही (परावर्तन) क्रिया सम्पन्नता द्वारा वांछित दर्शन, लक्ष्य, कार्यक्रम व पद्धति का प्रसारण होना भी भावी है। इसी क्रम में परिष्कृत संचेतना पूर्वक जीवन जागृति का अभिव्यक्त होना और अन्य ज्ञानात्माओं का जागृति के अनुरूप प्रेरणा देने का कार्यक्रम भी भावी है।
प्रत्यावर्तन पूर्वक प्राप्त व्यंजनाएं विकास के लिये गुणात्मक गति प्रदायी हैं।
गुणात्मक (विकास कार्य) व्यंजना से सुबोध, सुबोध से सुसंस्कार, सुसंस्कार से गुणात्मक संवेदना, गुणात्मक संवेदना से सत्य–संकल्प तथा सत्य संकल्प से गुणात्मक व्यंजना है। स्थिति एवं क्रिया-संकेत ग्रहण क्षमता ही व्यंजनीयता है।
संकेत–ग्रहण–प्रक्रिया बद्ध ज्ञान प्राप्य को पाने, उसे सुरक्षित रखने के कार्यक्रम में अभिव्यक्त है। प्राप्त के अनुभव के क्रम में भास,–अभास, प्रतीति एवं अनुभूति ही ज्ञापक है।
मानव दूसरों के लिये भी संकेत प्रसारित करता है।
संकेत–ग्रहण–क्रिया ही अनुमाननारोपण तथा अनुमानांकुर भी है, जो सकल्प, इच्छा विचार एवं आशा है।
पांचों इन्द्रियों द्वारा रसों की व्यंजना मन पर, इन्द्रिय समूह तथा मन के द्वारा तात्विक व्यंजना वृत्ति पर, इन्द्रिय मन तथा वृत्ति के

द्वारा भावों (मौलिकताओं) की व्यंजना चित्त पर तथा इन्द्रिय, मन वृत्ति औरचित्त के द्वारा स्थितिवत्ता एवं सत्यतत्त की व्यंजना व बुद्धि पर उनके विकास और अभ्यास के स्तर के अनुरूप पायी जाती है।

वातावरण एवं क्रिया-संकेत-ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता ही व्यंजनाहै। प्रत्येक संकेत के पूर्व–अधिष्ठित आशा, विचार, इच्छा और संकल्प को वे संकेत पुनराकार प्रादान करते है जो वर्तमान में प्रत्यक्ष हैं। फलतः मनुष्य में अनेक वैविध्यताएं, कुशलता, निपुणता, कला, विचार और आशा के रूप में प्रकट होती है। साथ ही पाण्डित्य में से, के लिये ही सर्वभौमता है।

शरीर के द्वारा व्यवहार, हृदय के द्वारा शरीर, प्राण के द्वारा हृदय और मन के द्वारा प्राण का संचालन प्रसिध्द है।

मन का संकेत संवेग के रूप मे है। वह प्राण के द्वारा मेधस पर प्रसारित होता है। मेधस से तरंग में अनुवर्तित होकर शरीर को क्रिया–व्यापार में रत होने के लिये बाध्य कर देता है। बाह्य प्रकृति के संकेत इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाते है। यहा परानुक्रम संकेत–ग्रहण प्रक्रिया हैं।

आशा और विचारों के स्पनन्दन के अनुरूप प्राणोद्दीपन और, प्राणोद्दीपन के अनुरूप आशा और विचारों का स्पन्दन प्रसिध्द है। यही प्रक्रिया काम, क्रोध, भय, भ्रान्ति, मोह, शोकादि क्लेश परिपाकी क्रियाओं में स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

स्पन्दन--प्रतिस्पन्दन क्रिया प्रक्रिया सहित ही सन्तुलन–असन्तुलन, समाधान समस्या, स्नेह–द्वेष, शान्ति–अशान्ति, सन्तोष–असन्तोष, गौरव-तिरस्कार, आदर-अनादर,विश्वास–अविश्वास, श्रध्दा-अश्रध्दा धैर्य–अधैर्य एवं कृतज्ञता–कृतघ्नता पूर्ण कार्य व व्यवहार को मनुष्य सभी आयामों कोषों तथा स्थितियों में निभ्रान्ति अथवा भ्रांतिपूर्वक सम्पन्न करता है।

प्रत्यावर्तन एवं परावर्तन का सत्तुलन ही पूर्वानुक्रम एवं परानुक्रम को स्पष्ट करता है। इसी पध्दति से आत्मा का प्रभाव , पर, बुध्दि का प्रभाव चित्त पर, चित्त का प्रभाव वृत्ति पर, वृत्ति का प्रभाव मन पर पाया जाता है। यही आत्म–नियन्त्रित अभिव्यक्ति है। यही अनुभवमूलक जीवन एवं जीवन की पूर्णता है।

आत्मानुशासित जीवन ही अनुभव पूर्ण है।

अनुभवमय अस्तित्व में ही परमानन्द, आनन्द, सन्तोष, शान्ति और सुख कें पूर्ण आप्लावन की निरन्तरता है।

ब्रह्मानुभूति में परमानन्द, आत्मानुभूति में आनन्द, बुध्दि की अनुभूति में सन्तोष चित्त की अनुभूति में शान्ति एवं वृत्ति की अनुभूति में सुख है। यही अनुभव समुच्च है।

अनुभव समुच्चय ही अभ्युदय की परम उपलब्धि एवं लक्ष्य है।

अभयुदयशील सामाजिकता ही अनुभव–समुच्चय ग्रहण करनें योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता प्रदान करती है। यही मानवीय परम्परा का आधार है।

मानवीयता का संरक्षण,संवर्धन,आचरण एवं संयमहीसामाजिकताहैं। धीरता, वीरता, उदारतापूर्ण स्वभाव, पुत्रेषाणा, वित्तेषणा, लोकेषणापूर्ण विषय प्रवृत्तियां तथा न्याय, धर्म एवं सत्यता पूर्ण दृष्टि ही मानवीयता की महिमा है। जिनके संरक्षण हेतु संस्कृति, सभ्यता एवं विधिव्यवस्था का प्रणयन शिक्षापूर्वक विकास के लिये सर्वसुलभ होता है। अनुभवपूर्ण मनुष्य में मानवीयतापूर्ण व्यवहार स्वभावतः पाया जाता है।

मानवीयतापूर्ण व्यवहार ही सामाजिकता है।

समाजिकतापूर्ण जीवन ही अतिमानवीयता के प्रति जिज्ञासा है।

"ज्ञानात्मनोविर्जयते"

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

卐 चार

आधारहीन कल्पना ही स्वप्न है।
आगन्तुक गुण ही कल्पना है।
स्वभाव गुण (अर्जित गुण) और गान्तुक गुण, ये गुण के दो भेद प्रसिध्द हैं। शक्ति का नियोजन उत्पादन, उपयोग, वितरण व उपभोग में प्रसिध्द है। क्रिया–कलाप में गुणों का आदान–प्रदान, चैतन्य जीवन में स्वभाव मूल्यों का आदान–प्रदान दृष्टव्य है।
चैतन्य की स्वभावगत शक्तियों का इन्द्रिय–व्यूह द्वारा प्रकटीकरण तथा उसकी गुणगत प्रक्रिया का संकेत–ग्रहण पूर्वक समर्थन अथवा असमर्थन भी उसी से सम्पन्न होता है।
मनुष्य में आगन्तुक अथवा अर्जित स्वभाव (मौलिकता) ही प्रत्यक्ष है।
चैतन्य इकाई स्व–मूल्यानुसार ही पर–मूल्यांकन करती है।
मूल प्रवृत्तियों के मूल में स्वयं की मौलिकता का अस्तित्व रहता ही है।
स्वभाव, मूल प्रवृत्तियों के रूप में प्रत्यक्ष है।
मूल प्रवृत्तियां हर्ष–क्लेश की सीमान्तवर्ती परिपाकीय है।
संस्कारपूर्वक ही मूल प्रवृत्तियों का उदय होता है। परिमार्जनपूर्वक ही पुनराभिव्यक्ति होती है।

मन, वृत्ति, चित्त और बुध्दि के क्रमानुवर्ती संवेगों के मूल में पायी जाने वाली इच्छाओं मे अपेक्षाकृत तीव्र इच्छाएं अर्जित स्वाभाव है। जो प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्य एवं कारण कौटिकी इच्छाएं प्रच्छन्न रूप में अवस्थित रहती हैं। यह संस्कारों में पाया जाने वाला सूक्ष्य भाग है। सम्पूर्ण इच्छाएं संस्कारगत एवं व्यवहारगत रूप में स्थित हैं जो प्रमाणित हैं।

तीव्र इच्छा को साकार रूप में प्रदान करने के लिये इकाई तन–मन धन का नियोजन करती है।
संवेग तीव्र, मन्द और सूक्ष्य भेद में दृष्टव्य है जो क्रम से तीव्र कारण और सूक्ष्य इच्छाओं पर आधारित है।
इच्छा की गति बराबर संवेग है।
दर्शन -।-आकांक्षा १ = इच्छा २ = संवेग ३ = प्रज्ञागति ४ = ज्ञ न५ = दर्शन है।
प्रवेश पूर्वक (पारदर्शकता पूर्वक) स्थिति संकेत–ग्रहण एवं प्रसारण क्रिया ही प्रज्ञा है। अनुभव योग्यत क्षमता ही सत्ता में समाहित इकाई की पारदर्शकता है। यही सर्वोच्च विकास है। सत्ता में प्रकृति का सम्पृक्त रहना प्रमाणित है, साथ ही सत्ता में इकाई अनुभव पूर्ण होना भी प्रमाणित है।
संकेतानुसार वेग ही संवेग हैं, जिसमें संवेदना रहती है।
ज्ञानावस्था की इकाई में किसी भी प्रकार के संस्कार से संस्कारित होने के पूर्व किसी न किसी पूर्व–संस्कार की विद्यमानता स्वभाव के रूप में पायी जाती है। पूर्व–संस्कार, अध्ययन एवं वातावरण अग्रिम संस्कारों की प्रस्थापना के लिये अनिवार्य कारण है।
संस्कारगत स्वभाव तीन श्रेणियों में गण्य हैं।

१. मानवीयता,
२. अतिमानवीयता,
३. अमानवीयता।

ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से सम्पन्न होनें पर्यन्त गुणात्मक संस्कारपूत होना आवश्यक है।
यही अभ्यास पूर्वक अभ्युदय का प्रमाण है।
समाज ही व्यक्ति के संस्कारों के परिमार्जन, परिवर्तन और प्रस्थान का कारण है। अभ्युदयकारी अध्ययन, व्यवस्था एवं तद्नुसार

आचरण ही समाज है।
समाज ही व्यवस्था एवं शिक्षा पूर्वक कृत्रिम वातावरण को भी उत्पन्न करता है।
प्राकृतिक वातावरण की तुलना में कृत्रिम वातावरण संस्कार-आरोपण क्रिया में विशिष्ट सशक्त कारण है।
मनुष्येतर सृष्टि की संज्ञा ही प्राकृतिक वातावरण है।
मानव मनुष्येतर प्रकृति का व्यवसाय पूर्वक उपयोग, उपभोग, शोषण एवं पोषण करता है। वह उसको अपने व्यवसाय के निमित्त कच्चे पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करता है।

चैतन्य पक्ष द्वारा जड़ पक्ष में बलात् संक्रमण और इतर चैतन्य इकाइयों पर विचार पूर्वक आक्रमण या संक्रमण होता है, साथ ही विवेक और विज्ञान पूर्वक सामाजिक एवं सह-अस्तित्व पूर्ण होताहै। सामाजिकता की स्थापना आक्रमण अथवा बल प्रयोग से सम्भव नहीं, अपितु विकास के लिये अपेक्षित उच्च संस्कारों द्वारा ही यह सम्भव एवं सुलभ है।
स्वभाव ही सामाजिकता का मूल्यांकन करता है। उसी (स्वभाव) के आधार पर उसी के लिये, उसी को सुसंस्कारों से विकसित करने के लिये ही अध्ययन है।

अध्ययन की पुष्टि, प्रकाशन, प्रचार, प्रदर्शन से है। इसकी सफलता या असफलता सामाजिकता के संरक्षण के लिये की गयी शिक्षा व व्यवस्था पर आधारित है मानवीयता तथा अतिमानवीयता से सम्पन्न प्रत्येक इकाई के स्वभाव को अविच्छिन्न बनाने योग्य कृत्रिम वातावरण का निर्माण करना, शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्योपान्त कार्यक्रम है। यही आप्तों की आकांक्षा है। अनुभूति ही आप्तत्व है। अनुभूति केवल सत्य में है। वह क्षमता, योग्यता एवं पात्रता पर निर्भर है। वह विकास और ह्रास पर, विकास

ह्रास इच्छाओं पर, इच्छाएं संस्कारों पर, संस्कार वातावरण अध्ययन एवं पूर्व संस्कारों पर संस्कार वातावरण अध्ययन एवं पूर्व संस्कार अनुभूति पर आधारित पाया जाता हैं।
अनुभूति, वर्ग, मत, सम्प्रदाय, पक्ष, भाषा तथा राष्ट्र की सीमाओं से बाधित नहीं है।
अनुभूति योग्य अर्हता को उत्पन्न कर देना ही सुसंस्कार है।
ब्रह्मानुभूति योग्य अर्हता पर्यन्त संस्कार पूत होना भावी है।

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

卐 पांच

शरीर के द्वारा सम्पन्न होने वाला उत्पादन, वित ण, व्यवसाय, व्यवहार एवं उपभोग ही ज्ञानात्मा का लक्ष्य नहीं है। ज्ञ नात्मा आनन्द में निरन्तरता चाहता है।

ज्ञानात्मा बौद्धिक समाधान के बिना सन्तुष्ट नही है।

ज्ञानात्मा को न्यायपूर्ण व्यवहार के बिना शान्ति नहीं है।

नियमपूर्वक व्यवसाय के बिना उत्पादन का बिपुलीकरण नहीं है।

उत्पादन मात्र का आस्वादन स्थूल शरीर के पोषण एवं व्यवहार गति सींमान्तवर्ती उपादेयी है।

यान्त्रिक–तान्त्रिक प्रयोग भी उत्पादनापेक्षा में निहित है।

प्रत्येक आवश्यकीय आस्वादन से जड़ पक्ष की पुष्टि होती है। चैतन्य पक्ष के मन को सुख या दुख भी आ सकताहै।

सुख के भास–आभास का कारण ही है उसकी निरन्तरता के लिये जिज्ञासा। अर्थ का विपुलीकरण सुख की निरन्तरता का साधन सिद्ध नहीं हुआ। साथ ही अर्थ उपेक्षणीय भी नही है, क्योंकि जड़ शरीर के पोषण और समाज गति के निमित्त उत्पादन आवश्यक है। अर्थ के सदुपयोग में सभ्यता एवं आचरण प्रकट होता है, जिसकी अक्षुण्णता ही अग्रिम विकास का उदय है।

न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवहार ही सुख एवं शान्ति की निरन्तरता है। धर्मपूर्ण विचार ही समाधान है, जो सन्तोष की निरन्तरता है। धर्मविहिन वस्तु या इकाई नहीं है।

प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म का अध्ययन प्रसिद्धहै। ब्रह्मानुभूति ही परमानन्द है। यही आनन्द की निरन्तरता है।

चैतन्य इकाई में गठन–परिणाम नहीं है। साथ ही जागृति के अर्थ में क्रिया और आचरण परिमार्जन, परिवर्तन प्रसिद्ध है।

आशा, आकांक्षा, विचार, विवेक और कला, कुशलता–निपुणता पाण्डित्य के अनुरूप में क्रिया, आस्वादन एवं अनुभूति के भेद से प्रत्यक्ष है।

प्राप्य का ही आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है।

प्राप्त में ही अनुभूति है, 'वह' ब्रह्म ज्ञान सत्य है।

व्यापक ब्रह्म है।

"वह" एवं उसकी अनुभूति देश–कालादि सीमा से मुक्त है।

आस्वादन मात्र से भी सुख, सन्तोष, आनन्द भासता है। इसलिए विलासिता भी इसी उपादेयता की सीमा में सीमित है।

विलासिता से आनन्द की निरन्तरता नहीं है। यदि होती तो विलासिता की भी निरन्तरता होती।

किसी प्रकार का भोग–विलास या आराम एक अवधि के अनन्तर अप्रिय, असहनीय तथा अनावश्यक होता है, यह प्रसिद्ध है। आहार–विहार, श्य्या की क्षण–भंगुरता प्रसिध्द है।

मानवीयतापूर्ण जीवन में आहार–विहार, श्य्या आदि में संयम तथा आवश्यक से अधिक उत्पादन और कम उपभोग के सिध्दात की स्थापना एवं पालन होता है।

मानवीयतापूर्ण एषणा–त्रय में वित्तेषणा से पुत्रेषणा तथा पुत्रेषणा से लोकेषणा श्रेष्ठ होने के कारण मानवीयता से अधिक स्थिति को पाने के लिये जिज्ञासा प्रसिध्द है। मनुष्य लोकेषणा में, से, के लिये उत्पादन के अधिकांश भाग को नियोजित करता है। फल ही है कि वित्त और पुत्र की एषणाओं तक सीमित जन उन्हीं के मार्गदर्शन में सुरक्षित रहना व उनसे प्रेरणा प्राप्त करना चाहते हैं। लोकेषणायुक्त मनुष्य में धर्म–सत्य–पूर्ण दृष्टि, वीरता–उदारता एवं दया पूर्ण स्वभाव है। यही देवमानव है। वे निर्विवाद रूप से अन्य अविकसित इकाइयों के मार्ग दर्शक हैं।

जिस मनुष्य के उत्पादन का अधिकांश वितरण में और न्यून अंश उपभोग के निमित्त प्रयुक्त होता है वही श्रेष्ठ मानव है। वही ब्रह्मानुभूति क्षमता पाने का प्रधान लक्षण है ।

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

卐 छः

ज्ञानात्मा, जीवात्मा, प्रकृति तथा परमात्मा की जानकारी उसके अनुभव की चर्चा प्रसिध्द है ।

पदार्थ–व्यूह (क्रिया–समूह) ही प्रकृति है ।

व्यापक ज्ञान पूर्ण है ।

असंख्य स्थान में पदार्थ-व्यूह की स्थिति भ्रम, गति, परिणाम पूर्वक ह्रास विकास के भेद–प्रभेद से प्रत्यक्ष है ।

ज्ञान में पाये जानें वाले विभिन्न स्थानगत पदार्थ–व्यूह में से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार अवस्थाओं में परिलक्षित है जो पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाएं हैं ।

जड़ पदार्थ के विकास का चरमोत्कर्ष ही प्राणावस्था, प्राणावस्था का अन्तिम विकास ही चैतन्य जीवावस्था, चैतन्य जीवावस्था का विकास ही चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था, चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था का विकास ही भ्रान्ताभ्रान्ता ज्ञानावस्था, भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था का सर्वोच्च विकास ही निभ्रान्त देव एवं दिव्य ज्ञानावस्था है । सबको ज्ञान (सत्य) सर्वत्र प्राप्त है ।

चैतन्य ज्ञानात्मा का अन्तिम विकास ब्रह्मानुभूति है ।

ज्ञान में ही ज्ञानात्मा का अनुभवपूर्ण है । इसमें संदिग्धता नहीं है । पूर्ण में अनुमान का विलय होता है ।

अनुमान के बिना पुनरानुभव के लिये प्रयासोदय नहीं है, इसलिये। दर्शन के लिये प्रकृति से अधिक विशालता नहीं है । उसके दर्शन क्रम में स्वयं का अध्ययन स्पष्ट है । स्वयं की अध्ययन–स्पष्टता ही ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता है जो प्रसिद्ध है ।

भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानात्मा का अग्रिम विकास ही निर्भ्रान्त देवात्मा, निर्भ्रान्त देवात्मा का अन्तिम विकास ही निर्भ्रान्त दिव्यात्मा पद प्रकट है । यह गुणात्मक विकास शृंखलाबद्ध सिद्ध है । इस समग्र विकास क्रम का अधार प्रेरणा एवं त्राप भी केवल ज्ञान में ही है ।

अधिक और कम की गणनाएं अपेक्षाकृतहै तथा भाव और अभाव भी काल, विस्तार और वस्तु की गणमाएं हैं ।
जड़ता के प्रति आसक्ति स्वतन्त्रता का लक्षण नहीं है । उससे मुक्ति का उपदेश है, यह विकास के लिये प्रेरणा है ।
प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र होना व रहना चाहता है ।
अनुभव–समुच्चय ही स्वतन्त्रता है । दर्शन समुच्चय पूर्वक कार्यक्रम समुच्चय का अनुसरण करना ही साधना है । फलतः अनुभव है ।
मानव में अनादि काल से अमरत्व और अजेयत्व की कामना विद्यमान है ।
मनुष्य पराजय नही चाहता ।
मनुष्य में बल–बुद्धि–रूप–पद धनात्मक विभूतियों की उपलब्धियां प्रत्यक्ष हैं । निर्भ्रम अवस्था में बुध्दि अजेय और आत्मा अमर है जिसका अनुभव प्रसिध्द है । स्वतन्त्रता ही अजेयत्व एवं अनुभव ही अमरत्व का प्रकाशन है । यही क्रम से सर्तकता एवं सजगता है जिसके लिये ज्ञानात्मा प्यासी है ।
स्त्री एवं पुरूष शरीरों के आकार मात्र जड़ संरचना तथा वैचारिक दातव्यता समान वैभव है ।
चैतन्य पुंज मे ही वैचारिक दातव्यता है ।
सूक्ष्य शरीर जिस आकार–प्रकार वाले शरीर को माध्यम बनाकर आस्वादन क्रिया में रत रहता है, सदैव उससे आस्वादन सुख दे सकने मे सूक्ष्य शरीर कल्पना करता है ।
इसी क्रम में मनुष्य–शरीर का भी प्रादुर्भाव हुआ है । इससे अधिक की संभावना नहीं हैं । भोग से अधिक भोग पदार्थो को एकत्रित करने में सुख की निरन्तरता सिध्द नहीं होती है । इसके साथ यह भी ज्ञात हो गया है कि ब्रह्मानुभूति ही परमानन्द की निरन्तरता है, इसलियें (प्राणायुक्त कोशिकायें जो मानव–शरीर की रचना

में व्यस्त एवं क्रियाशील है, सूक्ष्य शरीर के निर्देशानुसार आकार एवं काम करने के लिये प्रयासरत है ।
पदार्थावस्था गतिपूर्वक सापेक्ष रूप में प–रिणामशील है ।
गति एवं परिणामशील पदार्थ ही प्राणावस्था में वातावरण के दवाव से गुणात्मक परिवर्तन को पाकर प्राण कोशिकाओं के रूप में प्रसवित होते है । प्राण कोशिकायें वातावरण, स्व–क्षमता व अवसर के योगफल स्वरूप रचनारत हैं" । यही वनस्पति–सृष्टि के रूप में प्रत्यक्ष है ।
जीवात्माओं की शरीर रचना भी प्राण–कोशिका समूह से निर्मित होती है । इस रचना में मेधस एक विशिष्ट भाग, समाहित रहता है जिसे प्राण अवस्था में नहीं पाया जाता है ।
ऐसे शरीर द्वारा जीवात्मा आशापूर्वक भोगों में व्यस्त रहता है जो प्रत्यक्ष है । वातावरणानुसार जीवात्मा के शरीर तथा उनकी आशा में परिवर्तनशीलता प्रत्यक्ष होती है । यही प्रक्रिया विषय परिणाम को प्रकट करती है
जीवात्मा एवं ज्ञानात्मा के शरीर संरचना में अधिकांश समानता रहते हुये भी ज्ञानात्मा के शरीर में विशिष्टताएं हैं ही जो शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धेन्द्रियों की अपेक्षाकृत विशिष्टताएं हैं । ऐसे शरीर द्वारा प्रत्येक ज्ञानात्मा व्यवसाय, व्यवहार, उपयोग उपभोगात्मक क्रिया–कलाओं को स्वयं के आशा–विचार–इच्छा–संकल्पानुरूप करता है । तद्नुसार उसमें वैचारिक परिवर्तन परिमार्जन होता है। फलतः: अनुभवाभिलाषी एवं प्रयासी होता है ।
इसी क्रम में जिज्ञासा एवं प्रयासपूर्वक गुणात्मक विकास से सम्पन्न होता है । फलतः अनुभव होता है ।
अनुभव = सत्य = व्यापक = शून्य = परमात्मा = ज्ञान–साम्यसत्ता = ब्रह्म अनुभव है ।

अनुभव इकाई की अर्जित क्षमता, योग्यता, पात्रता है। यही विकास का चरमोत्कर्ष व लक्ष्य है जिसके निमित्त ही आद्यन्त प्रयास है।

"ज्ञानात्मनोविजयते"

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

卐 सात

जड़ क्रिया का अन्तिम परिणाम चैतन्य, चैतन्य का अन्तिम विकास सत्य में अनुभूति ही है।

परिणाम ही जड़ प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के रूप में परिलक्षित है। चैतन्य प्रकृति में विचार, परिवर्तन एवं परिमार्जन दृष्टव्य है।

प्रत्येक उत्पत्ति के पूर्व उसकी स्थिति भिन्न थी। इसलिये सम्यक विवेचना के उपरान्त अनन्त स्थितियों में रूप, गुण स्वभाव और धर्म के आधार पर वैविध्यता की स्थिति स्पष्ट है।

विवेचनाधिकारी ज्ञानावस्था में सिद्ध हुआ है।

विवेचना स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में है और प्रधानतः रूप व गुण का विश्लेषण भी है।

उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की गणना केवल भौतिक एवं रासायनिक–परिणाम व परिवर्जन की सीमानतवर्ती है जो मरणशील है। अर्थात् अग्रिम परिणाम भावी है।

चैतन्य ज्ञानात्मा में अनुभव सीमान्तवर्ती क्षमता पूर्ण होनें की संभावना हैतथा साथ ही उसके योग्य परिमार्जन शीलता भीप्रसिद्धहै। चैतन्य इकाई सदा ही जागृति के क्रम में हैं। निद्रा जड़ता का स्वाभाविक गुण है।

जागृति की तुलना में ही स्वप्न एवं सुषुप्ति का अध्ययन है। सत्ता में अनुभूति एवं दर्शन योग्य क्षमता ही जागृति है।

अनुभूति योग्य क्षमता पर्यन्त रूप, गुण, स्वभाव की अभिव्यंजना भावी है। जिससे हर्ष–शोकादि द्वन्द्व का प्रसव है।

विषय सम में, सम मध्यस्थ में, मध्यस्थ व्यापकता में समाधानित, सन्तुष्ट एवं आप्लावित है। इसी प्रकार अमानवीयता मानवीयता, में, मानवीयता अतिमानवीयता सत्ता में क्रम से तृप्त, सन्तृप्त और

अतिसन्तृप्त है।

रहस्यता से अज्ञान, अज्ञान से भ्रम, भ्रम से मोह, मोह से अक्षमता, अक्षमता से अमानवीयता और अमानवीयता से ही रहस्यता की कल्पना है।

यथार्थ की अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को पा लेना ही विकास है। यही निर्भ्रमता है।

क्रिया का अभाव नहीं है, इसलिये विकास का अभाव नहीं है।

लक्ष्य के बिना विकस नहीं है। लक्ष्य, विश्राम ही है। वह केवल सत्य में ज्ञान एवं अनुभव है।

मानव का लक्ष्य सुख, शान्ति, सन्तोष तथा आनन्द ही है।

रूप और गुण के योगफल में विषम, यप–गुण–स्वभाव के योगफल में सम, रूप–गुण–स्वभाव–धर्म के योगफल में मध्यस्थ प्रतिष्ठा है। यही प्रकृति की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा है। यही रासायनिक एवं भौतिक सीमा में उद्भव, विभाव, प्रलय को, चैतन्य अवस्था में गठन क्रिया और आचरण पूर्णता को सिद्ध किया है।

इकाई रूप–गुण–स्वभाव एवं धर्म के योगफल में ही स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का अनुभव करती है। यही सामाजिकता का परिणाम एवं पूर्ण सतर्कता है। इस क्षमता से परिपूर्ण होते तक मनुष्य में गुणात्मक परिमार्जन भावी है। अनुभव सत्य में है। अनुभव में सन्दिग्धता नहीं है। सन्दिग्धता पर्यन्त अनुभव नहीं हैं। अनुभव में सन्दिग्धता पर्यन्त परिवर्तन, परिमार्जन भावी है। यही नियतिक्रम है।

सृष्टि में पाये जाने वाले तिरोभाव,भाव, अभाव, परिणाम, परिपाक संबंध ज्ञान योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता की अपूर्णता ही माया है। वातावरण वस्तुस्थिति संकेत ग्रहण योग्यता, व्यापक में स्थिति ज्ञान क्षमता, इकाई के विकास पर आधारित है। ऐसी क्षमता की

अपूर्णता तक वैविध्यता है। फलतः अमानवीयता का अभाव नहीं है। अभिव्यंजना की पूर्ण ग्रहण क्रिया या वस्तुस्थितिवत्त. की पूर्ण स्वीकृति ही अनुभूति है।

प्रकृति ब्रह्म में सम्पृक्त है। प्रकृति के अपेक्ष कृत विकास के आधार पर अधिक विकसित की अभिव्यंजना (अभिप्राय सहित व्यंजना) और कम विकसीत की व्यंजना प्रसिद्ध है। अभिव्यंजना में गुणात्मक विकास संकेत, व्यंजना में उपयोगिता की संकेत है। अभ्युदय प्राय (अभ्युदय जैसा) ही अभिप्राय है। जिसमें उभ्युदय का भास या आभास होना आवश्यक है।

मनुष्य जागृत अवस्था में सृष्टि की नित्यता एवं परिणामशीलता का, स्वप्नवस्था में उसकी अनित्यता एवं क्षण भंगुरता का, सुषुप्ति में स्वयं की उसकी जड़ता का भास–आभास एवं अनुमान करता है। इसी का परिणाम है कि ये सब अनुभूति के लिये स्वरण की भूमिका का निर्वहन करते हैं। निद्रा केवल जड़ शरीर का विकार है, न कि चैतन्य क्रिया का।

सम्पूर्ण प्रकृति ब्रह्म में अनुप्राणित पायी जाती है। अस्तु, उसको अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से सम्पन्न होने तक आनंद की निरन्तरता नहीं है। उसके लिये मानवीयता पूर्ण व्यवहार, अतिमानवीयता योग्य अभ्यास ही एक मात्र उपाय है।

क्रिया ही क्रिया के साथ आस्वादन,सान्निध्य और संघर्ष की स्थिति मे है। आस्वादन की क्षण भंगुरता, सान्निध्य में प्रेरणा, संघर्ष की असहनीयता प्रसिद्ध है।

सृष्टि की सम–विषमात्मक क्रिया में आवेश का अभाव नहीं है। आत्मा अनुभवाभ्यासी, बुद्धि बोध्याभ्यासी, चित्त चिन्तनाभ्यासी वृत्ति तुलनाभ्यासी और मन आस्वादनाभ्यासी हैं। ज्ञानावस्था की इकाई अतिमानवीयतापूर्ण, मानवीयतापूर्ण एवं अमानवीयतापूर्ण आचरण को अपने विकास के स्तर के अनुरूप प्रकट करती है।

सान्निध्यानुभूति-पर्यन्त सतर्कता क्रियाशील है। अनुभूति ही "सजगता" है जिसकी निरन्तरता है।"

सम–विषयात्मक आवेश को मध्यस्थ क्रिया ही आत्मसात करती है अर्थात सामान्य करती है।

अभाव, रोग, सशंकता एवं सन्दिग्धात्मक स्थितियां, अविवेक, अत्याशा, आलस्य प्रमाद सहित संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भयात्मक मूल प्रवृत्तियां सभी क्लेशों के कारण हैं जिनका निराकरण विवेक व विज्ञानपूर्ण ज्ञान का प्रयोग तथा अभ्यास ही है।

सत्कर्म (विकासानुकूल) में प्रवृत्ति हेतु आप्तों का उपदेश है।

क्लेश व हर्ष, कर्म–परिपाकवश ही भासित होते हैं।

ब्रह्मानुभूति योग्य अधिकार पाना ही चित्त शुद्धि है। यही चैतन्य क्रिया का चिरन्तन कार्यक्रम है।

जड़ चैतन्य सभी का आद्यन्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि–व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा प्रणाली, विनियम और उपभोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है।

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

卐 आठ

चेतना, चैतन्य एवं जड़ की चर्चा है।

चेतना ही ब्रह्म सत्ता है।

जड़ ही विकास–पूर्वक चैतन्य अवस्था में प्रतिष्ठित होता है।

परमाणु की सीमा में ही विकास और ह्रास का दर्शन है।

रचनाएं अनेक अनुण–परमाणु के संघटित पिण्ड के रूप में दृष्टव्यहैं।

जड़ प्रकृति की भौतिक रासायनी क्रिया, प्रक्रिया, प्रभाव और परिणमा ही सीमा है। वह चैतन्य और चैतन्यता नहीं है।

प्रस्थापन एवं विस्थापन प्रक्रिया ही तात्विक सीमा की गरिमा है।

परमाणु में पाये जानें वाले अंशों की संख्या वृद्धि ही प्रस्थापन घटना एवं न्यून होना ही विस्थापन घटना है।

किसी एक परमाणु में अंशों की वृद्धि के लिये दूसरे परमाणु में अंशों का घटना आवश्यक है।

जड़ प्रकृति की सीमा में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प का प्रकटन नहीं है। सत्ता में प्रकृति स्थिति है।

दृष्ट ही प्रकृति है और दर्शक भी प्रकृति का ही विकसित अंश है। सम्यक दर्शक निर्भ्रम इकाई है। दर्शन–क्षमता विकास का द्योतक है। अस्तित्व से अधिक अनुमान, नहीं है।

स्थिति भास रहते हुये विश्लेषण–अनुभव का अभाव ही ज्ञातव्यता में अपूर्णता, प्राप्तव्यता में अभावता है। फलतः होतव्यता में संशकता दृष्टव्य है। क्रियात्मक अस्तित्व जड़–चैतन्यात्मक प्रकृति का प्रसिद्ध लक्षण है।

"मैं हूं" का प्रकटन ज्ञानावस्था में विचार पूर्वक व्यवहार व विहार के रूप में, जीवास्था में आशा पूर्वक विहार के रूप में, प्राणावस्था में रचनापूर्वक आस्वादन के रूप में, पदार्थावस्था में गठनपूर्वक गति के रूप में दृष्टव्य है। "सत्तात्मक अस्तित्व और दृश्यात्मक

अस्तित्व प्रसिध्द है।" सत्ता में प्रकृति दृश्यात्मक अस्तित्व के रूप में है और सत्तात्मक अस्तित्व पूर्ण है। पूर्ण का खण्डन विखण्डन नहीं है। यदि खण्डन–विखण्डन है तो वह पूर्ण नहीं है। खण्ड की सीमा परिमाण दिशा और क्रिया है। काल, विकास और ह्रास भी परिमाण हैं। परिमाण ही इकाईत्व है। यहीं संख्या और समूह है। सम्यक् प्रकार से ख्यात होना ही संख्या है।

अपूर्णता ही सीमा, सीमा ही इकाईत्व, इकाईत्व ही संख्या, संख्या ही अस्तित्वशीलता, अस्तित्वशीलता ही क्रिया, क्रिया ही परिमाण परिमाण ही परिमाण, परिमाण ही सापेक्षता, सापेक्षता ही–विकास एवं ह्रास, विकास ही गठन–क्रिया व आचरण पूर्णता ही अमरत्व, सतर्कता व सजगता, अमरत्व,सतर्कता व सजगता ही दर्शन-क्षमता, दर्शन–क्षमता ही पूर्णानुभूति और पूर्णाअनुभूति ही इकाईत्व का विश्लेषण है। गठनपूर्णता ही चैतन्यता व अमरत्व, सामाजिकता ही सतर्कता एवं सह अस्तित्व अनुभूति ही सजगता एवं पूर्ण विकास है।

अस्तित्व पूर्ण सत्ता में प्रकृति की स्वीकृति = सत्याभास अस्तित्व की आंशिका की स्पष्ट स्वींकृति = आभास अस्तित्व स्पष्टता तथा प्रयोजन सहित स्वीकृति प्रतीति वस्तुगत सत्यता की उद्घाटन क्रिया–प्रक्रिया एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखण्ड सामाजिकता का आचरण–अनुसरण एवं अनुशीलन ही व्यवहार, समाधान एवं अनुभूति निरन्तरता हेतु किये गये प्रयास, पध्दति एवं प्रणाली ही अभ्यास है।

उपयोगिता–उपादेयता एवं अनिवार्यता, देश–काल–अधिकार व उपलब्धि की अपेक्षा में निर्णीत है। प्रकृति के विकास की श्रृंखला में पाये जाने वाले अन्तिम ह्रास तथा विकास का दर्शन स्पष्ट होना, साथ ही उसमें पाये जाने वाले नियमों का विश्लेशित होना ही

अध्ययन है। अध्ययन से संबंधित क्रिया ही प्रयोग, व्यवसाय, व्यवहार, प्रयास एवं अभ्यास है। प्रयोग पूर्वक ही रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का अनुभव है जिसका प्रत्यक्ष रूप ही है भौतिक समृध्दि।

प्रयास पूर्वक ही मनुष्य की परस्परता में निहित मूल्य का निर्वाह किया जाता है जो व्यवहार है। इसका प्रत्यक्ष रूप ही सह-अस्तित्व हैं, यही व्यावहारिक समाधान है।

मनुष्य अभ्यासपूर्वक ही मानवीयता, दैव मानवीयता, दिव्य मानवीयता में प्रतिष्ठित होता है जिसका प्रत्यक्ष रूप दया, कृपा एवं करूणा है।

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

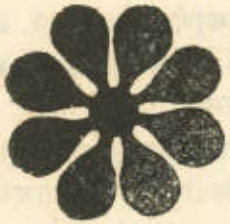

卐 नौ

मानवीयता पूर्ण जीवन में सतर्कता पूर्ण होती है। दिव्य मानवीयता-पूर्ण जीवन में सजगता परिपूर्ण होती है।

समाधानपूर्ण तर्क (नीति) ही सतर्कता है।

निर्भ्रमता ही सजगता है। निर्भ्रमता ही परम विकास है।

विकासानक्रम में श्रम–गति–परिणाम प्रसिध्द है।

गन्तव्य के लिये गति, विश्राम के लिये श्रम, अमरत्व के लिये परिणाम स्पष्ट है।

गठन, क्रिया एवं आचरण पूर्णता पर्यन्त श्रम का अभाव नहीं है।

रासायनिक सीमा से मुक्ति गठन पूर्णता से,आमानवीयता की सीमा से मुक्ति क्रिया पूर्णता से, एषणाओं की मुक्त आचरण पूर्णता से चरितार्थ होती है। आचरण पूर्णता ही जीवन की प्रतिष्ठा है।

देव–मानवीयतापूर्ण जीवन की सीमा में क्रिया पूर्णता पर अधिकार तथा पुत्रेषणा, वितेषणा से मुक्ति एवं सजगता की प्रतीति पायी जाती है। अभ्युदय पूर्व ही गंतव्य, आचरण पूर्णता जागृति में प्रत्यक्ष है। यही मुक्त जीवन सजनता–परमानन्द तथा दिव्य मानवीयता है। गति की गुणात्मक संक्रमण क्रिया ही अभ्युदय है। यही सर्वतोमुखी विकास है।

परिणाम ही क्रम से गठनपूर्णता, अमरत्व, अस्तित्व, चैतन्य, जीने की आशा एवं प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट है।

वस्तु–स्थिति–सत्य, वस्तुगत सत्य तथा स्थिति सत्य के प्रति सन्दिग्धता सहित क्षमता ही भ्रम है जो विकास की अपूर्णता है।

परमाणु में गठनपूर्णता,क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता पायीजातीहै।

निर्भ्रमता ही सजगता, सजगता ही अनुभव, अनुभव ही विकास एवं विकास ही निर्भ्रमता है।

दूर–दूर तक या सीमा विहिन "का, की, को" उदय ही जागृति

है। अज्ञान, ज्ञाता की अक्षमता का द्योतक है, न कि ज्ञान का अभाव। यह विकासपूर्ण क्षमता से ही प्रमाणित होता है। वस्तु–स्थिति एवं वस्तुगत सत्य का दर्शन,सत्ता में अनुभव "का, की, को" उदय है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई में किसी न किसी अंश में दर्शन–क्षमता दृष्टव्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई अपनी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई से अधिक क्षेत्र में क्रियाशील है, यह उदय का मूल कारण है। उदयहीं अनुमान है। ब्रह्मानुभूति पर्यन्त उदय का अभाव नहीं है, साथ ही अनुमान का भी अभाव नहीं है।

अनुभव में ही अनुमान तिरोहित होता है, यह प्रसिद्ध है।

चैतन्य इकाई नें निर्भ्रम पूर्वक आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभूति को दूर–दूर तक फैला हुआ देखा है। यही वह उदय है जिसमें अन्धकार में प्रकाश का, मृत्यु में अमरत्व का, अज्ञान में ज्ञान का अनुभव है।

वस्तुस्थिति में देश–काल–दिशा–परिमिति को वस्तुगत स्थिति में रूप, गुण स्वभाव की परिमिति तथा धर्म की विशालता को स्पष्ट किया है।

अनुभव में ही अपारिमितता की प्रमाणित किया है। पूर्ण ही ब्रह्मा, ब्रह्म ही प्रत्यक्ष है। यही पूर्ण वैभव है।

प्रत्येक इकाई की स्थिति अन्य की अपेक्षा में स्वयं की दिशा स्पष्ट करती है।

अनुभव–मूलक विचार ही व्यवहार में न्याय (सह–अस्तित्व),तथा व्यवसाय में समृद्धि है।

ज्ञान, अनुभव तथा क्रिया दर्शन है।

स्थितिवत्ता का ज्ञान ही बोध एवं उसका अनुभव ही जागृति है।

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की सम–विषामात्कम अतिरेक का नियंत्रण

मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में है। इसलिये उसका अनुभवानुभशासन प्रसिद्ध है। अनुभवानुशासन ही प्रबुद्धता है। सजगता एवं सतर्कता ही प्रबुध्दता का प्रत्यक्ष रूप है। पांडित्वपूर्ण सतर्कता ही बौध्दिक सामाधान है। यही व्यवहार में निर्वाह क्षमता तथा व्यवसाय में कुशलता एवं निपुणता–पूर्ण योग्यता है।

सजगता ही अनुभव क्षमता और सर्तकता ही समाधान क्षमता है। शिक्षा प्रणाली एवं व्यवस्था–पद्धिति की सीमा में सतर्कता–योग्य क्षमता को जन सामान्य बनाने की व्यवस्था है।

किसी अंश में सजगता एवं सतर्कता ज्ञानावस्था की इकाई में पायी जाने वाली अविभाज्य क्षमता है जिसकी पूर्णता के लिये वह हजज्ञातु है। उसकी पूर्णता ही विकास है जो मानवीयता एवं अतिमानवीयता है।

अतिमानवीयता ही आनन्द है। मानवीयता ही सामाजिक कार्यक्रम का आधार है। अतिमानवीयता पर्यन्त जीवन का कार्यक्रम है। अमानवीयता व्यतिक्रम है।

ज्ञानावस्था ही निर्भ्रमता का निकटतम पद है। ज्ञानावस्था का धर्म ही आनन्द है। चैतन्य इकाई का प्रथम साधन ही शरीर है।

शरीर की सीमा में जो जागृति–स्वप्न–सुषुप्ति है, वह विषय व राग की सीमा मे गण्य है।

शरीर का संचालक, (चैतन्य क्रिया) संचालन क्रिया को रोकना हैं या कम करता है तब शरीर निद्रा में रत होता है।

अन्य सभी साधन शरीर द्वारा निर्मित है जो सामान्य एवं महत्वाकांक्षी को सीमा में उपयोगी सिध्द हुये हैं।

साधन साध्य नहीं है। साध्य के लिये साधन आवश्यक है।

सम्पूर्ण अविकिसत, विकसित के लिये साधन है। साधन को साध्य समझना ही अज्ञान है।

जड़ में चिन्तन क्रिया नहीं है।

प्रत्यक्ष से अधिक की अनुमान क्षमता ही चिन्तन का प्रधान लक्षण है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक समग्र प्रकृति के प्रति रहस्यता का अभाव न हो जाये। जो जिस अस्तित्व के प्रति, निर्भ्रम न होते हुये भी उस अस्तित्व को स्वीकारता हैं, वही अनुमान है। चैतन्य इकाई ही विकास पूर्वक जागृति होती है।

दिव्य मानव पूर्ण जागृत, देव मानव जागृत, मानव अर्ध–जागृत, अमानवीय मनुष्य अल्प जागृत तथा जीवन मात्र अजागृत हैं।

चैतन्य पद के अनन्तर ही जागृति और सतर्कता की बाध्यताएं हैं। सतर्कता ही विवेक है। यही आत्मा का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियम का निर्णय करने योग्यत क्षमता एवं व्यवहार करने योग्य योग्यता है।

सतर्कता ही समाधान है। परम सजगता ही परमानन्द है जिसमें निरन्तरता हैं।

स्वयं की ब्रह्म में ओत–प्रोत स्थिति और उसकी निरन्तरता ही परमानन्द हैं। परमानन्द की निरन्तरता में दया–कृपा–करूणा निःसृत है। यह अविकसित के विकास लिये सर्वाधिक उपयोगी है।

अनुभव-।-अनुमान ⊐ प्रयोग, व्यवहार व अभ्यास पुनः अनुभव। यह प्रक्रिया जागृत चैतन्य प्रकृति की सीमा प्रसिध्द है।

ब्रह्म (पूर्ण) में अनुभव प्रमाण सहित इंगित किया है, साथ ही प्रकृति को चारों अवस्थाओं के विश्लेषण को व्यवहार, प्रमाण सहित व्याख्यायित किया है और प्रयोग प्रमाण को भी स्वीकारा है, जिसके सुदृढ़ आधार पर सर्वमंगल कार्यक्रम, अर्थात् मानव जीवन में अभ्युदयात्मक कार्यक्रम निर्विवाद रूप में स्पष्ट हुआ है जो पूर्णतया व्यावहारिक है। यह सर्वसुलभ होने की कामना है जिससे ही :–

भूमि स्वर्ग होगी, मनुष्य देवता होंगे ।
धर्म सफल होगा, एवं नित्य मंगल होगा ॥

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

"ज्ञानात्मनोर्विजयते"

अक्षय शक्ति संपन्न विकसित चैतन्य इकाई के आचरण एवं उनकी गति

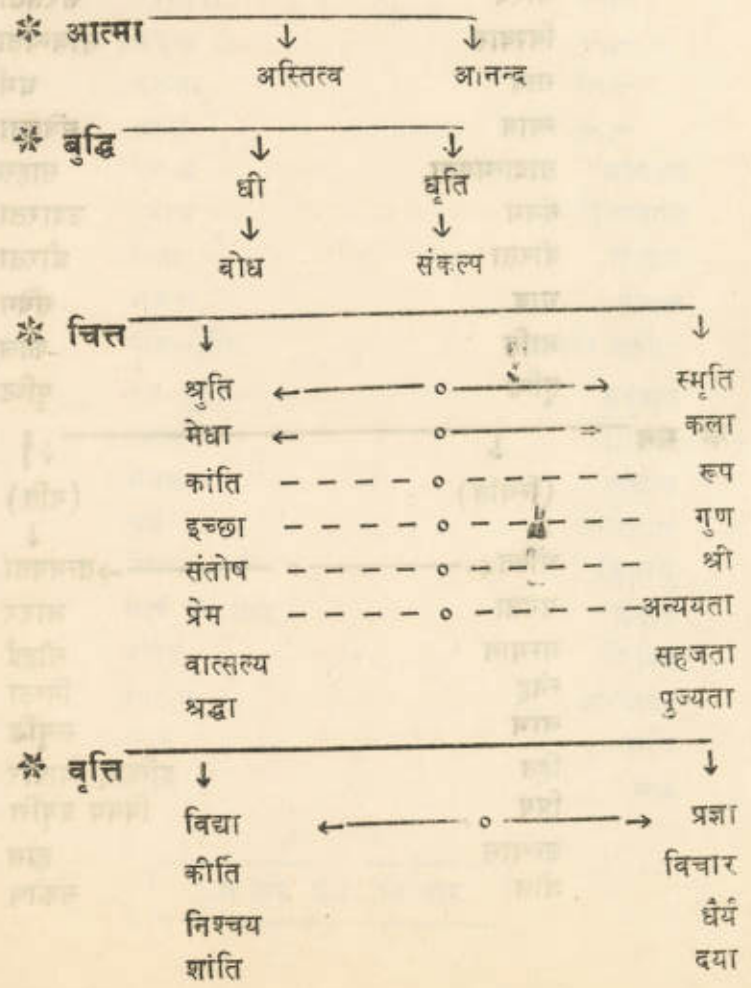

कृपा	करूणा
दम	क्षमा
तत्परता	उत्साह
कृतज्ञता	सौम्यता
गौरव	सरलता
विश्वास	सौजन्यता
सत्य	धर्म
न्याय	संवेदना
तादात्मयता	साहस
संयम	उदारता
वीरता	धीरता
भाव	संवेग
जाति	काल
तृष्टि	पुष्टि

* मन

(स्थिति)	(गति)
भक्ति	तन्मयता
ममता	आदर
सम्मान	सौहर्द्र
स्नेह	निष्ठा
लाभ	समृद्धि
हित	इन्द्रिय, व्यापार
प्रिय	विषय प्रवृत्ति
उल्लास	ह्रास
शील	संकोच

मृदु	संवहन
कठोर	वहन (सहन)
खट्टा	पोषण–शोषण
मीठा	–,,–
चिरपरा	–,,–
कड़ुवा	–,,–
कसैला	–,,–
खारा	–,,–
सुगन्ध	प्रश्वसन
दुर्गन्ध	विश्वसन
पिता	संरक्षण
ममता	पोषण
पति–पत्नि	यतित्व सतीत्व
पुत्र–पुत्री	अनुराग
स्वामी	दायित्व
सेवक	कर्त्तव्य
गुरू	प्रमाणिक
शिष्य	जिज्ञासु
भाई एवं मित्र	प्रगति
बहिन	विकास
स्वागत	आस्वादन
चयन	रूचि
आशा	सुख

मन का ६४ व्यापार

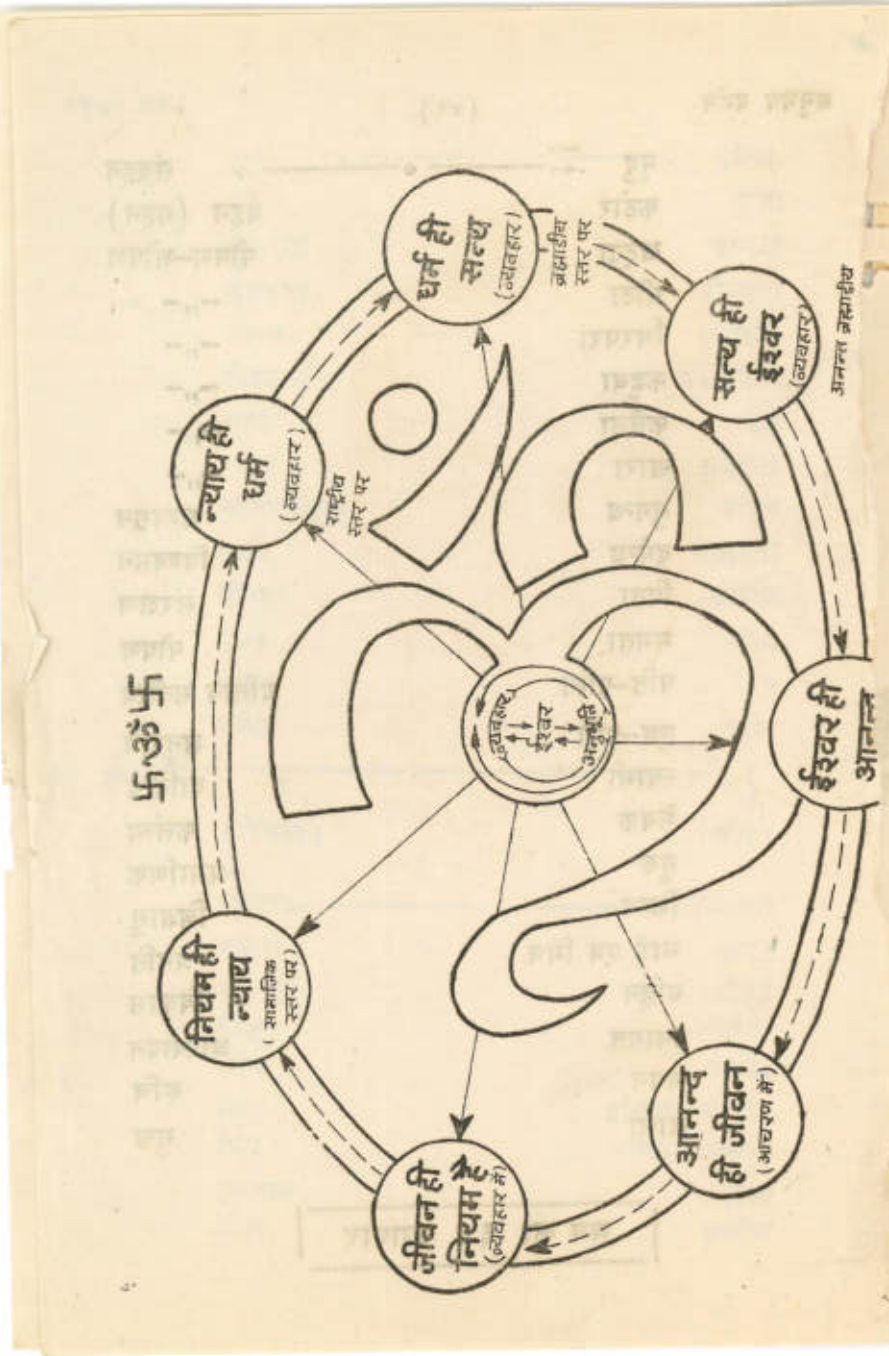

卐 ॐ 卐
धर्म ही सत्य (व्यवहार)
ब्रह्मांडीय स्तर पर
सत्य ही ईश्वर (व्यवहार)
अनन्त ब्रह्मांडीय
ईश्वर ही आनन्द
आनन्द ही जीवन (आचरण में)
जीवन ही नियम है (व्यवहार में)
नियम ही न्याय (सामाजिक स्तर पर)
न्याय ही धर्म (व्यवहार)
राष्ट्रीय स्तर पर
व्यवहार
ईश्वर
अनुभूति